सत्संग

शिव शर्मा

सत्संग

शिव शर्मा

प्रकाशक
परा वाणी, 217, प्रगति नगर, कोटड़ा। अजमेर

शीर्षक - सत्संग

लेखक - शिव शर्मा. 217, प्रगति नगर, कोटड़ा, अजमेर।
मो. - (91) 9252270562, 9588927938
www.geetaandadhyatm.com

प्रथम संस्करण – 2025

मूल्य – 100 रुपये मात्र

प्रकाशक - परा वाणी प्रकाशन, 217, प्रगति नगर, कोटड़ा, अजमेर।
(सर्वाधिकार सुरक्षित)

Book Compilation & Graphics - Nand Kishore Jasnani
Mo. - (91) 9024032320

आमुख

सूफी संत हज़रत हर प्रसाद मिश्रा 'उवैसी' मेरे गुरु हैं। उनके सत्संग में जो कुछ सुना, जाना, समझा, आत्मसात किया वही इस किताब में शब्दांकित है। इसमें छोटे-छोटे कथन हैं। दो टूक बात। साफ-सुथरी बात। कोई लाग-लपेट नहीं। कपट नहीं। जो सच है वह स्वीकार। मत मतांतर नहीं। मनुष्य के रूप में मनुष्य की बात। यही है सत्संग।

इस किताब में कोई वाद नहीं है। किसी दर्शन का प्रतिपादन नहीं है। किसी साधना पद्धति के विकास का शब्दांकन नहीं है। ...यहां कथन का मतलब है साफ, निर्मल, अम्लान, अनाडम्बर, निष्कपट आदि।

इस पुस्तक में छोटे-छोटे विचार हैं। टिप्पणियाँ हैं। दृष्टिकोण हैं। नज़रिया है। सकारात्मक सोच है। दर्शन है, चिंतन है, मनन है। मेरी-आप की सोच। हम सब का चिंतन। हमारी शंकाओं, संशय, उलझनों, वैचारिक द्वंद्वों आदि से संबंधित अभिव्यक्तियां हैं। स्पष्टीकरण हैं। समाधान हैं। ईश्वर, गुरु, संत-महात्मा, पूजा, इबादत, साधना, योग, मोक्ष, पुनर्जन्म आदि से संबंधित धारणाएं हैं। हमारे, आपके अनुभव हैं। अनुभूतियां हैं। आंखों देखे हाल की समीक्षा है।

यह सब हमने गुरु के पास बैठ कर धारण किया है। शास्त्र में उतर कर आचमन किया है। आपस में साथ-साथ बैठ कर कोई निष्कर्ष अर्जित किया है। इसलिये यह सत्संग है। आज का सत्संग। हमारा सत्संग। प्रत्येक मनुष्य का वैचारिक वैभव। सीधी, सकारात्मक, सटीक सोच। आध्यात्मिक विज्ञान। रूहानी विज्ञान। अध्यात्म की भौतिकी। सोच का रसायन शास्त्र। परमाणु से आकाश तक। ब्रह्माणु से ब्रह्माण्ड तक। सरल, समझ में आने वाली सोच का सत्संग।

यह प्रयास भी मेरे दीक्षा गुरु सूफी संत हज़रत हरप्रसाद मिश्रा 'उवैसी' की रूहानी कृपा का ही परिणाम है। आप को शत्-शत् नमन!

शिव शर्मा

अनुक्रम

क्र.		पृष्ठ सं.
01	ॐ नमः शिवाय	07
02	पत्नी का तप, पति का त्याग; दोनों बेमिसाल	08
03	गुरु कृपा	09
04	ध्यान - सुमिरन	10
05	दीक्षा केवल रूहानी कर्म है	12
06	अजब कहानी प्रेम की (राधा-कृष्ण-गोपियां)	14
07	भक्ति का शरीर से संबंध नहीं है	15
08	आंतरिक सत्संग ही कल्याण है	15
09	मंत्र को सांस के साथ जोड़ो	17
10	गुरु के बिना कौन बतावै बाट	18
11	पलटू अंधियारी मिटी, बाती दीन्ही बार	19
12	ओम् नमो भगवते वासुदेवाय	21
13	गीता के अनुसार गुरु कौन	22
14	साधना, थ्योरी नहीं; प्रैक्टिकल वर्क है	22
15	सांस को देखो, श्वास को सुनो और ईश्वर की अनुभूति करो	24
16	लागी लागी सब कहिन, लागी लागी नाहीं	25
17	नाम दिया अथवा नाम खोल दिया	26
18	मृत्यु रूपांतरण है, समाप्ति नहीं	28
19	मन तो जाप करे, तन भी जाप करे	28
20	कीर्तन भी उस पार की अनुभूति कराता है	30
21	जीव, आत्मा, संस्कार और स्वभाव - I	31
22	जीव, आत्मा, संस्कार और स्वभाव - II	32
23	जीव, आत्मा, संस्कार और स्वभाव - III	33
24	मो कों कहाँ ढूंढे रे बंदे	34
25	पानी में मीन प्यासी, मोहे सुन- सुन आवे हाँसी	36
26	इबादत में तहज़ीब नहीं, जागरुकता जरूरी है	37
27	गुरु का आसन तो आज्ञा चक्र पर होता है	37
28	अपना दीपक खुद जलाओ	39
29	पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार	40
30	गुरु शिष्य के बीच मानस संबंध होता है	41

31	इबादत करना तुम्हारी जरुरत है या मकसद	42
32	गुरु संग पीवत चढ़ी खुमारी	43
33	मंत्र में अभिसिक्त पानी का विज्ञान	43
34	क्या होती है मुक्ति	44
35	मुक्ति की पांचवी अवस्था; सर्वात्म	45
36	मुक्ति; चौथी अवस्था	46
37	गुरु चाहे तो एक बार में ही पार लगा दे	46
38	गुरु कृपा के तीन रूप	47
39	इबादत पूरी तरह आंतरिक प्रयास है	47
40	साधना के दौरान जब बिंदु दिखता है	49
41	बेमिसाल सूफ़ी	49
42	योगी भर्तहरि का अनमोल कथन	50
43	तेरे घड़े से पानी का एक कटोरा दे दे	51
44	गीता का सार	52
45	गुरु का ऊर्जा शरीर भी शक्तिपात करता है	53
46	गुरु से नजदीकी सर्वोपरि	54
47	व्यक्ति नहीं, शक्ति ही गुरु है	55
48	गुरु ब्रह्म शक्ति का ज्ञान कराता है	56
49	ब्रह्म, प्राण, आत्मा और जीव	57
50	शिष्य के मन की चारों अवस्थाओं पर गुरु का नियंत्रण रहता है	58
51	ब्रह्म पुराण का सुनहरा अंडा हमारी आकाशगंगा के पेट में है	59
52	संसार में कुछ भी मिटता नहीं है	60
53	गीता में परमात्मा के छह रूप	61
54	दीया बत्ती	62
55	मां ने बेटे को ही अपना गुरू बनाया और मुक्त हो गई	63
56	शिष्य का हृदय ही गुरू का आश्रम है	64
57	समय बड़ा बलवान	64
58	अपनी श्वास-प्रश्वास को प्रतिदिन पांच मिनट अवश्य देखो	65
59	स्त्री चरित्रं..देवो न जानेति, कुतो मनुष्यः (भाग – 2)	66
60	गुरू शक्ति के तीन अद्भुत प्रसंग	68
61	चाहे जिधर से जाओ, अंत में शून्य ही मिलता है	68
62	सुदर्शन चक्र	70

63	आज गुरु पूनम	71
64	हिमालय के श्वेत लोक में रहती हैं सूक्ष्म शरीरधारी जीवात्माएं	72
65	हनुमान चालीसा में भक्ति के आठ स्तर	73
66	जीव और ब्रह्म एक रूप है	74
67	कर्म और कर्मफल, दोनों ही मनुष्य के हाथ में है	75
68	गुरु ने पूछा - क्या चाहते हो	75
69	श्रावण पूर्णिमा के दिन पहली राखी पत्नी ने...	76
70	व से व्यक्ति, भ से भक्त	77
71	पचास लाख टन हीरे की धूल वायुमंडल में फैलाई जाएगी	78
72	ऊपर पर भी आग, नीचे भी आग, फिर भी हम जीवित हैं	79
73	भक्ति चाहिए तो जीवन की प्राथमिकताएं बदल दो	79
74	धरती से करोड़ों गुना अधिक पानी आकाश में है	80
75	आदमी को चाहिए, वक्त से डर कर रहे	81
76	हमारा अस्तित्व ब्रह्मांड से जुड़ा हुआ है	81
77	प्रेरक प्रसंग	82
78	एक दीक्षा ऐसी भी	83
79	गीता - 14वां अध्याय, श्लोक संख्या 6	84
80	गंगा में अस्थि विसर्जन का वैज्ञानिक आधार	85
81	कथा जपः	86
82	भक्ति तो मुक्त करती है, बांधती नहीं है	86
83	स्त्री की गति (आंतरिक सोच), पुरुष की विगति (आंतरिक पतन)...	87
84	दीक्षा कर्म बहुत अधिक कठिन होता है	88
85	जाने कितने दिनों के बाद गली में आज चाँद निकला	89
86	मां के पेट तक पहुंचने वाला जीव - एक लंबी और रोचक यात्रा	90
87	गुरू गोविंद	91
88	प्राण वायु ऑक्सीजन की संरचना करने वाले प्रोटॉन कण...	92
89	गुरु हमें अमृत्यु के लिए जीना सिखाता है	93
90	गुरु की अद्भुत शक्ति के दो दृष्टांत	93
91	परिचय - श्री शिव शर्मा	95

01. ॐ नमः शिवाय

मेरे गुरुदेव हज़रत हर प्रसाद मिश्रा साहब ने एक बार कहा कि यह मंत्र हमें ब्रह्मांडीय शक्ति से जोड़ता है। इस मंत्र के निरंतर जाप से मनुष्य के अंदर दिव्य नाद की निरंतरता बनती है। वही नादीय निरंतरता हमें बाहर वाली ब्रह्मांडीय शक्ति (नाद ज्योति या ध्वनि प्रकाश) से जोड़ देती है। इसे ही ओंकार, आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म आदि कहा गया है।

अब इस मंत्र का अर्थः -

शिव यानी सार्वभौम सत्ता। शिव यानी पुरुष और स्त्री तत्व दोनों; एक्स - वाई शुक्राणु अंडाणु दोनों। शिव यानी धन-ऋण विद्युत दोनों; और शिव अर्थात ज्ञान कर्म शक्ति दोनों। ऐसे विराट स्वरूपवान शिव को मैं नमन करता हूं। नमन यानी उसके विराट रूप के स्वयं में दर्शन के लिए प्रार्थना करता हूं। उस शक्ति के साकार - निराकार अस्तित्व के समक्ष झुकता हूं। अपने ज्ञान, सामर्थ्य आदि का अहंकार उस शिव के समक्ष विसर्जित करता हूं।

शिवलिंग भी इस विराट सत्ता का पार्थिव प्रतीक है। मैं इसलिए शिवलिंग को प्रणाम करता हूं। इसमें ब्रह्मांड की कॉस्मिक ऊर्जा है, मंत्र शक्ति है, अतः मैं इस पार्थिव शिव को नमन करता हूं। इस स्थूल शिव विग्रह के जरिए मैं निराकार शिव सत्ता से जुड़ सकता हूं; इस कारण मैं ऐसे विग्रह की पूजा करता हूं। काले पत्थर का शिवलिंग ब्रह्मांडीय ऊर्जा का अवशोषण करता रहता है। शिवोहम् यानी मुझ में ही वह विराट सत्ता है। इस परम सत्ता का सूक्ष्मतम् रूप मेरे अंदर है। मैं अपने अंदर के इस शिवोहम् को प्रत्यक्ष कर लेने के लिए 'ओम् नमः शिवाय' का जाप करता हूं। प्रकृति के तीनों विकारों से परे इस परम सत्ता की कृपा मुझे भी मिले इसलिए ओम् नमः शिवाय। प्रतिदिन ओम् नमः शिवाय। हर श्वास में ओम् नमः शिवाय। श्वास के साथ ओम् और प्रश्वास में नमः शिवाय; ऐसे मानस जाप करें! इसके प्रभाव से श्वास-प्रश्वास एक हो जाते हैं, यह नाम यज्ञ है।

02. पत्नी का तप, पति का त्याग; दोनों बेमिसाल

पति बारह साल तक ग्रंथ लिखता रहा। पत्नी उन बारह वर्षों तक मौन रही। पति के काम में दखल ना पड़े इसलिए मौन रही। ग्रंथ पूरा होने के बाद पति को पूरी बात ज्ञात हुई। उसने अपनी पत्नी के तप और उनके नाम को अमर कर दिया। उच्च कोटि के विद्वानों में उसे अमर कर दिया।

ये दोनों थे वाचस्पति मिश्र और उनकी पत्नी भामती; मधुबनी (मिथिला) के एक गांव में रहते थे। विवाह के बाद ही वाचस्पति ने एक ग्रंथ लिखने का काम प्रारंभ किया। संस्कृत भाषा के विख्यात ग्रंथ ब्रह्मसूत्र पर आदि शंकराचार्य ने भाष्य लिखा था। वाचस्पति ने इस भाषा की टीका लिखना शुरू किया। पत्नी को समझाया मैं बड़ी पुस्तक लिख रहा हूं। जब तक काम पूरा नहीं हो जाए, तुम मेरे पास मत आना। बोलना मत, बस तीन काम रोज करती रहना; प्रतिदिन प्रातः काल मेरे स्नान के लिए पानी रखना, दोपहर में भोजन की थाली रखना और संध्या समय दीपक जोड़ना। पत्नी ने हां में सिर झुका दिया। बोली कुछ नहीं! कोई प्रतिवाद नहीं! विधाता ने समझाया और आस्था ने स्वीकार कर लिया। बारह वर्ष तक यही क्रम चलता रहा। भरी जवानी के बारह वर्ष सावन-भादों मौन रहे। कजरी तीज चुप रही। होली-दिवाली नि:शब्द रहे। बसंत एवं फागुन ने भी दरवाजा नहीं खटखटाया। पत्नी ने घर में ही वनवास भोगा। ग्रंथ पूरा हुआ। वह रात का वक्त था। अचानक ही बुझ गए दीपक को भामती ने वापस जलाया। रोशनी में पति ने त्याग की उस मौन प्रतिमूर्ति को देखा। प्रश्न किया, कितना समय बीत गया? आज मेरा काम पूरा हो गया है। भामती बोली जी बारह वर्ष व्यतीत हुए हैं। यह सुनते ही विद्वान वाचस्पति की विद्वत्ता मानो पत्थर से टकराई। सामने खड़ी थी मौन तपस्या। विद्वत्ता आश्चर्य से बोली कि बारह वर्ष बीत गए। तुम्हारा मौन तप मेरी विद्वत्ता से जीत गया भामती। तुम्हारे पत्नी धर्म को मेरा प्रणाम! तुम्हारी निष्काम सेवा को मेरा नमन! फिर पुनः बोले - इस तरह पति की उपस्थिति में भी खाली रह गए ये बारह वर्ष तो मैं अब लौटा नहीं सकता। किंतु मैं तुम्हारे इस मौन तप को अमर कर देता हूँ। इतना कहकर वाचस्पति ने ग्रंथ का नाम 'भामती' लिख दिया। ब्रह्मसूत्र की टीका की जगह भामती लिख दिया। अपनी सारी विद्वत्ता एवं परिश्रम को उस सुहागन के तप को पुरस्कृत करने के लिए त्याग दिया। स्वयं के ज्ञानमय परिश्रम के बारह वर्ष अपनी पत्नी के नाम को दे दिए। संस्कृत साहित्य में भामती अमर हो गई।

हम सभी पति-पत्नी, किसे प्रणाम करें! भामती को, वाचस्पति मिश्र को या दोनों को! अवश्य ही दोनों को - ऐसी स्त्री को और ऐसे पुरुष को।

सीखने की बात: - यह रिश्ता स्त्री-पुरुष के सह अस्तित्व का धर्म है, सह अस्तित्व का दर्शन है। यह संबंध परिवार का महोत्सव है। पति-पत्नी की ऐसी एकात्मता 'वयं- ब्रह्मास्मि' का प्रबोधन है - हम (दोनों) ब्रह्म की अवस्था में रहते हैं; हम ब्रह्म हैं। यह बात यजुर्वेद के महावाक्य - अहम् ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूं या मैं ब्रह्म की अवस्था में रहता हूँ) का रूपांतरण है।

03. गुरु कृपा

गुरु यानी ज्ञान की चेतना। कृपा अर्थात अनुग्रह। इस तरह गुरु तथा शिष्य के अज्ञान को मिटा देने की कृपा। मुरीद के हृदय में ज्ञान चेतना का उदय कर देने की कृपा। तो गुरु जब हमें अपने ही आत्मा का बोध करा देता है, तब उसे गुरु कृपा कहते हैं। हमें अंतस्थ ईश्वर के दर्शन करा देता है तब उसे गुरु कृपा कहा जाता है। हमारे संचित बुरे संस्कारों को भस्म कर देता है; यह गुरु कृपा है।

हमारे पास किताबी ज्ञान है कि मैं देह नहीं आत्मा हूं। लेकिन यह कोरा शब्द है; अनुभूति नहीं। अनुभूति निःशब्द होती है। अनुभूति स्वयं हमारे अंदर ही होती है। गुरु की अनुभूति हमारे काम नहीं आएगी। वह हमारा कल्याण नहीं करेगी। गुरु हमें वैसी अनुभूति कराता है; यही कृपा है। इसके लिए जरूरी साधना करा देगा। शक्तिपात कर देगा। सूक्ष्म शरीर से तुम्हारे पास आएगा और ब्रह्ममुहूर्त में उठाकर साधना का अभ्यास करा देगा। यह कृपा है।

इस तरह की गुरु कृपा इसी तरह से संभव है। भक्ति योग, ज्ञान योग, कर्म योग और नाम योग या सहज योग। शंकराचार्य ज्ञान योग के दृष्टांत हैं, स्वामी विवेकानंद कर्म योग के, मीराबाई भक्ति योग की और चैतन्य महाप्रभु नाम योग के दृष्टांत हैं। गुरु अपने शिष्य के पूर्व संस्कारों के अनुसार, उसके स्वभाव के अनुसार और उसकी योग्यता के अनुकूल साधना की राह पर चला देता है। साधना तो स्वयं साधक को ही करनी पड़ती है। अनुभूति भी उसे ही होती है। अनुभूति के बाद ही वह बोधावस्था में स्थिर होता है। तब

वह मन की चंचलता, बुद्धि की अस्थिरता, अहंकार के भोग से मुक्त होता है। गुरु की मदद से ऐसी अवस्था में पहुंच जाना ही गुरु कृपा है।

किंतु हम संसारी लोग हैं, हममें लोभ-मोह है, सुख की लालसा है, पद, मान, प्रतिष्ठा की भूख है। इसलिए गुरु कृपा के प्रसंग में हम चूक करते रहते हैं। वह उस पार उतारना चाहते हैं; हम इसी पार रहने के लिए आलीशान मकान मांग लेते हैं। वह रूहानी स्तर पर ले जाना चाहते हैं; हम उनसे अपने व्यापार का स्तर बढ़वा लेते हैं। वह हमें मुक्ति का सूत्र देना चाहते हैं; हम औलाद मांग लेते हैं, संतान की शादी का कर्म मांग लेते हैं।

संत-महात्मा इस धरती पर मनुष्य को तारने के लिए आते हैं; किंतु हम डूबने के शौकीन हैं। हमें सोने-चांदी की डोरी वाले बंधन में पड़े रहना अच्छा लगता है। गुरु भी क्या करें! हम अपने-अपने संस्कारों से लाचार, हम भी क्या करें! जय श्री राम!

04. ध्यान - सुमिरन

ध्यान यानी अपना ध्यान भी ना रहे, ऐसी अवस्था में पहुंच जाना। सुमिरन अर्थात भगवान का स्मरण करना, याद करना, उनका गुणगान करना, उनके नाम का जप करना।

यह दो अवस्थाएं हैं - ईश्वर के ध्यान में मग्न रहते हुए नाम का जाप करना, भगवान का गुणगान करना। किसी देवी-देवता के ध्यान में डूब कर उससे संबंधित मंत्र का जाप करना। दूसरी अवस्था है - नाम का जाप करते-करते परमात्मा के ध्यान में डूब जाना। मंत्र का या दीक्षा-नाम का जप करते हुए संबंधित दिव्य ज्योति में लीन होना। इन दोनों को ध्यान में सुमिरन या सुमिरन में ध्यान कहते हैं। लेकिन कोरा ध्यान बिलकुल अलग प्रक्रिया है। यह ध्यान योग है। इसमें मंत्र का जाप नहीं होता। सांस पर या ललाट वाले ज्योति बिंदु पर अथवा किसी विचार पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। फिर उसमें ही डूब जाते हैं। ध्यान लग जाने पर आप तो हैं ही नहीं। कोई सुध-बुध नहीं। उधर जाप में तो आप हैं। आपको होश है कि नाम या मंत्र का उच्चारण हो रहा है। आपको ध्यान है कि माला फेरी जा रही है। लेकिन ध्यान में तो आपको स्वयं का ध्यान भी नहीं रहता।

जप तो आपको ध्यान तक ले जाने का माध्यम है और ध्यान स्वयं को उस परम सत्ता में खो देने की अवस्था है। हमारे ऋषियों ने ध्यान किया। ब्रह्म का ध्यान किया। परम सत्ता का ध्यान किया। दिव्य शक्तियों का ध्यान किया। फिर ध्यानावस्था में ही बोध हुआ कि 'अहम् ब्रह्मास्मि'। ध्यान में ही बोध हुआ कि शिवोहम्। ध्यान में ही अनुभूति हुई कि अयात्मा ब्रह्म् (यह आत्मा ही ब्रह्म् है)। उस वक्त ऋषि का भौतिक वजूद तिरोहित था।

सुमिरन के लिए गीता में श्री कृष्ण ने कहा है कि तुम मेरा ध्यान करो और 'ओम् तत्सत्' का जाप करो। मतलब कि कृष्ण के ध्यान में लीन रहते हुए उक्त मंत्र का जाप करो। उधर चैतन्य महाप्रभु ने हरि नाम का कीर्तन किया। कीर्तन करते-करते उसी भाव में डूब गए; श्रीकृष्ण में डूब गए। कृष्ण की दिव्य चेतना में डूब गए। तब दिव्य वाणी सुनी - वृंदावन का उद्धार करो, जीर्णोद्धार करो। उनके लिए कृष्ण के ध्यान में कृष्ण नाम का सुमिरन हो गया। उन महाप्रभु के लिए कृष्ण नाम के सुमिरन में ही कृष्ण का ध्यान हो गया। उनका कीर्तन था - हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम-राम हरे हरे। यही ध्यान सुमिरन का दृष्टांत है।

हमारे ऋषि सिखाते हैं कि जिस देवी-देवता का मंत्र है उसका ध्यान आज्ञा चक्र पर करो और उसी के मंत्र का कंठ में जाप करो। परिणामस्वरुप वह शक्ति तुम्हारे मानस में साकार हो जाएगी। मंत्र की ऊर्जा सक्रिय हो जाएगी। ऊर्जा रूप में निराकार इन ज्योति पुंजो का जो भी दिव्य आकार होता है, उसे ऋषि ध्यानावस्था में प्रत्यक्ष देखता है। फिर स्मृति के आधार पर चित्र बनवाता है। वही स्वरूप आज प्रचलित है। मंत्र जाप के द्वारा ध्यान में पहुंचने पर आपको भी वही दर्शन होंगे।

तो साधकों के लिए तीन सूत्र हैं - 1. मंत्र के देवता या देवी का ध्यान आज्ञा चक्र पर और मंत्र का जाप कंठ से (मानस जाप) करना चाहिए 2. नाम का सुमिरन करते-करते उस नामधारी के ध्यान में डूब जाओ या मंत्र के अर्थ में लीन हो जाओ 3. ध्यान योग के लिए सांस या अन्य बिंदु पर टिक जाओ। जब खुद का ही ध्यान नहीं रहे तब समझो कि ध्यान लग रहा है। फिर इसी ध्यानावस्था में जो नाद सुनो एवं जो ज्योति देखो; उसमें डूबते जाओ या स्थिर हो जाओ। कभी-कभी ऐसा लगता है कि हम मर रहे हैं। तब डर जाते हैं। किंतु डरना नहीं है। ध्यानावस्था में मृत्यु का मतलब है - पूर्व संस्कारों का भस्म होना। यह ध्यान योग सर्व कल्याणकारी है।

नाम सुमिरन एक तरह की भावावस्था है। अहंकार के विसर्जन के बाद ही सुमिरन आरंभ होता है। खुद को तथा खुद की हैसियत को नगण्य मान लेने के बाद ही नाम भक्ति शुरू होती है। जिस मंत्र का जाप करते हैं उस मंत्र के अर्थ को आत्मसात करना भी अनिवार्य है। अर्थ ही मंत्र है, अर्थ ही दिव्य है और अर्थ ही आनंद है। शब्द तो आवरण है, खोल है।

05. दीक्षा केवल रूहानी कर्म है

दीक्षा रूहानी कर्म है। यह गुरु की ऐसी कृपा है जो शिष्य को आत्मबोध कराती है। उसे परम सत्ता तक ले जाती है। दीक्षा का दुनियावी सुख-भोग से कोई संबंध नहीं है। रोटी, कपड़ा, मकान, बरकत आदि के लिए महात्मागण अलग-अलग मंत्र देते हैं। अपनी संकल्प शक्ति से भी सुख-भोग उपलब्ध करा देते हैं। किंतु दीक्षा मंत्र तो केवल रूहानी यात्रा के लिए होता है; मुरीद का आध्यात्मिक कल्याण करने के लिए होता है।

सद्गुरु जब किसी मनुष्य को अपनी आंतरिक चेतना से जोड़ देता है, तो उसे दीक्षा कहते हैं। सद्गुरु यानी जिसका भगवान से रूहानी संबंध है। जिसकी आत्मचेतना परम सत्ता से जुड़ी हुई है। उधर शिष्य यानी जिसमें गुरु के प्रति रूहानी समर्पण का भाव है। शिष्य यानी जो अपने आंतरिक व्यक्तित्व का विस्तार करना चाहता है - 'अहम् से ब्रह्म्' तक जाना चाहता है। सद्गुरु ऐसा कराने में सक्षम होते हैं।

दीक्षा केवल रूहानी होती है - गुरु की रूह का शिष्य की रूह से संबंध। दीक्षा के बाद शिष्य की आध्यात्मिक उन्नति के लिए गुरु से लगातार ऊर्जा मिल रही है। शिष्य पर गुरु की लगातार नज़र है। मुरीद को भी गुरु के रूहानी स्वरूप के प्रति सदैव जागरूक रहना होता है। इस तरह दीक्षा उभय पक्षीय कर्म है; दोनों तरफ का दायित्व है। गुरु तो अपने दायित्व का निर्वाह करता रहता है। चूक शिष्य से ही होती है। लापरवाही शिष्य ही करता है।

दीक्षा बड़ी जिम्मेदारी है। गुरु-शिष्य दोनों की परस्पर 1/10 की हिस्सेदारी होती है। शिष्य के कर्मों का दसवां भाग गुरु को भोगना है। ऐसे ही गुरु के कर्म का इतना ही हिस्सा मुरीद को मिलता है। गुरु की तरफ से तो अच्छा ही मिलता है - ज्ञान की ऊर्जा मिलती है।

संचित कर्म भोग कटते रहते हैं। गुरु से तो ऊर्जा ही मिलती रहती है। हम केवल सदगुरु की ही बात कर रहे हैं। विचलन करने वाले कथित गुरुओं की नहीं। उधर शिष्य तो सब तरह के होते हैं, इसलिए शिष्य के गैर रूहानी कर्मों का जो भार गुरु पर पड़ता है, उसे गुरु रूहानी शक्ति से काटता है। ऐसे शिष्य धीरे-धीरे गुरु की ऊर्जा तरंगों से 'डी-लिंक' हो जाते हैं।

विधिवत दीक्षा के लिए गुरु एक वर्ष तक दीक्षार्थी पर नज़र रखता है। उसकी सोच और संकल्प-विकल्प पर ध्यान रखता है। अंदर की कसक व निष्ठा को देखता है। फिर नाम दीक्षा देता है। ऐसे मुरीद पर आरम्भ से ही शक्तिपात हो जाता है। ऐसे मुरीद पर शुरू से ही शांभवी कृपा हो जाती है। 'नाम' आज्ञाचक्र पर धड़कता है, ध्यान लग जाता है, समाधि का अनुभव आरंभ हो जाता है। रूहानियत में तेज गति से चढ़ाई होने लगती है। ललाट के बिंदु पर ज्योति कौंधने लगती है। नशा सा बढ़ने लगता है। अन्य अनेक अनुभूतियां होने लगती हैं।

दीक्षा के बाद गुरु का दायित्व बढ़ जाता है। शिष्य का कर्तव्य बढ़ जाता है। दोनों प्रतिपल रूहानी तरंगों से जुड़े हुए रहते हैं। शिष्य के अंदर निश्चिंतता बढ़ जाती है। वह प्रफुल्लित रहने लगता है। गुरु से मनोसंवाद होने लगता है। रूहानी कसक कम होने या टूटने से गुरु-शिष्य के मध्य चेतन तरंग वाला ऐसा संबंध या जुड़ाव भी टूट जाता है। तब 'चढ़ाई' रुक जाती है ।

दीक्षा के अनेक प्रकार होते हैं। पूर्व जन्म के संचित संस्कारों के अनुसार ही दीक्षा का रूप तय होता है। अच्छी बात यह है कि आप किसी 'सद्गुरु' की शरण में पहुंच जाएं। पार तो सद्गुरु ही लगाता है।

अब एक सच्ची घटना - कोई युवक वृंदावन गया। एक महात्मा के आश्रम में पहुंच गया, फिर बोला - नाम दीक्षा चाहिए। महात्मा बोले, अरे! अभी खाओ-पियो, मौज-मस्ती करो; पैसा कमाओ। अभी नाम सुमिरन कैसे करोगे। दस-बारह साल बाद आना। कुछ समय पश्चात वह दूसरे संत के पास गया; नाम मिल गया। किंतु पैसे वाला स्वाद नही छूटा। इस कारण नाम बेस्वाद ही रह गया। रूहानी दीक्षा सबके भाग्य में नहीं होती है।

06. अजब कहानी प्रेम की (राधा-कृष्ण-गोपियां)

कृष्ण के प्रेम में आत्मविभोर गोपियां; बेखुद गोपियां, बेसुध गोपियां। कैसा था वह प्रेम जो कि माखन चुराने से प्रारंभ हुआ था, चीरहरण में परिभाषित हुआ, रास में रसमय हुआ और महारास में संपूर्ण हुआ! कैसा था वह कृष्ण प्रेम! मां-बेटी, सास-बहू, जेठानी-देवरानी सब की सब उधर ही भाग रही हैं। तवे की रोटी छोड़कर, थाली का भोजन छोड़कर, दूध पीते हुए शिशु को छोड़कर, सारी गोपियां कृष्ण की तरफ भाग रही हैं। सब अपनी-अपनी पहचान छोड़कर एक ही दिशा में भाग रही हैं। आधी रात गए तक कृष्ण के साथ नाच रही हैं। कितना निर्भय था वह प्रेम! देह से ऊपर, संदेह से परे; सौ फीसदी खरा प्रेम!

प्रेम में गोपियों की अनूठी दीवानगी। खुद कृष्ण हो जाने की रूहानगी। सब की सब में कृष्ण ही रह जाने का उन्माद। बाकी सब विस्मृत; केवल कृष्ण याद। प्रेम की धारणा ब्रज की भूमि में जीवंत हो गई। रास में बद-हवास गोपियों का देह बोध विसर्जित हो गया। केवल जीवात्मा ही रह गई। सौंदर्य, श्रृंगार, नृत्य, ताल वंशी- नाद। अद्भुत रास, ब्रह्म् जीव का रास, प्रकृति- पुरुष का रास; पूरी ब्रजभूमि ही रास मय हो गई। ब्रजमंडल ही प्रेम का वेद हो गया। कैसा उदात्त था वह प्रेम जो आज पांच हजार साल बाद भी सजीव है। कृष्ण सजीव है, बांसुरी सजीव है, राधा-गोपियां सजीव हैं, ब्रजभूमि सजीव है। पांच हजार वर्ष लंबा रास, उल्लास! पांच हजार साल लंबा उत्सव! संपूर्ण प्रेम योग जो आज भी हम सबमें धड़कता है।

कैसा था वह प्रेम जो भागवत-पुराण हो गया, जो सूर का भ्रमर गीत हो गया; जो जयदेव का गीत गोविंद हो गया; जो मीरा हो गया। जो संपूर्ण भारत का कृष्ण भक्ति काव्य हो गया। कैसा था वह प्रेम जो कृष्ण मंदिरों में बेजोड़ स्थापत्य हो गया; चित्रकला में रंगोपासना हो गया और संगीत में वंशी वादन हो गया। यही अलौकिक प्रेम पूरी दुनिया में इस्कॉन टेंपल हो गया।

07. भक्ति का शरीर से संबंध नहीं है

भक्ति का संबंध भाव से है, शरीर से नहीं। शरीर तो हमें भक्ति के लिए जीवित रखे हुए है; बस। इबादत, सुमिरन, भक्ति आदि ईश्वर के भाव से आरंभ होती है और उसी भाव में डूबने तक पहुंचती है। परमात्मा के भाव में डूबना यानी तन्मय हो जाना। फिर उसी भाव में उठना-बैठना, खाना-पीना, काम-धंधा करना, नौकरी-व्यवसाय करना। ऐसे ही परम भाव में रहते हुए ऋषिगण श्लोक लिखते रहते थे, गुरुकुल चलाते थे, गर्भाधान करते थे एवं गृहस्थी को पालते थे।

हम शरीर से भगवान का नाम जपते हैं। हम देह से सुमिरन करते हैं। ऐसा करते हुए वस्तुत: हम शब्दों का उच्चारण ही करते हैं, सुमिरन नहीं। सुमिरन यानी शब्द या नाम के सहारे ईश्वर का स्मरण। स्मरण यानी भगवान के स्वरूप का ध्यान। परमात्मा के स्वरूप में ध्यान लगाते हुए किए जाने वाले जाप को सुमिरन कहते हैं। किंतु हम ऐसा जाप नहीं करते हैं। हमें तो ध्यान रहता है कि हम नाम जाप कर रहे हैं। हमें तो होश है कि एक घंटा बीत गया है। हमें पता रहता है कि इस दौरान कौन-कौन आया-गया, कैसी आवाज हुई। हम प्रभु के ध्यान में तो उतरे ही नहीं। हमारे शब्दों की लय तो बनी ही नहीं। हम तो शब्दों की गिनती का ध्यान रखे हुए हैं। यह भक्ति नहीं है, भक्ति की औपचारिकता का निर्वाह है। यह इबादत नहीं है, इबादत संबंधी अज्ञान है।

तुम अपने काम-काज, पत्नी-पुत्र आदि के ख्याल में रहते हुए इबादत नहीं कर सकते हो। इबादत के लिए, भक्ति के लिए तुम्हें गुरु के ध्यान में, परमात्मा के ध्यान में उतरना ही होगा। शरीर से उठकर भाव में बैठना ही होगा। भाव में खुद को भूलना ही पड़ेगा। तुम्हें परीक्षा देनी है तो घर छोड़कर परीक्षा भवन में जाकर बैठना ही होगा। ऐसे ही भक्ति के लिए शरीर के ध्यान को छोड़कर, ईश्वर के भाव में डूबना जरूरी है।

08. आंतरिक सत्संग ही कल्याण है

सत्संग यानी सत्य का साथ, अनश्वर के साथ, ईश्वर के साथ लग जाना। साथ का मतलब है उसी भाव में, अवस्था में, मानसिकता में उतर जाना। जो मनुष्य तुम्हें सत्य के साथ कर दे वे संत। जो जगह तुम्हें सत्य के निकट पहुंचा दे वह सत्संग-स्थल। जो किताबें

तुम्हें सत्य की अनुभूति के लिए प्रेरित करें वह वेद, वह उपनिषद, वह पुराण। किंतु यह सब बाहरी सत्संग है। इससे कल्याण नहीं होता है। सत् की बात जब तक अंदर नहीं उतरे तब तक 'संग' नहीं होता। तुम सत्संग से लौटे और घर पर पत्नी से झगड़ लिए, तुमने सत्संग वाली किताबें पढ़ी और दुकान पर जाते ही नौकर को लताड़ दिया। तुम कथा सुनकर नौकरी करने गए और वहां रिश्वत ले ली। सब गुड़-गोबर हो गया। तुमने बस संत को सुना, ग्रहण नहीं किया। तुमने वेद का कोई हिस्सा पढ़ा, उसे स्वीकार नहीं किया। बाहर वाला सत्संग बाहर ही रह गया, अंदर गया ही नहीं। तुम सत् के साथ हुए ही नहीं।

हमने कबीर की साखियां पढ़ी, पढ़ाई और उनके अर्थ भी लिखे लेकिन वो अंदर नहीं उतरीं। कबीर की रूह से भाव उठकर साखी बने; कबीर रूह में डूब कर बोले। इधर हमने कान से सुनी, आंखों से पढ़ी, दिमाग से समझी और मुंह से बोलकर पढ़ाई। इनमें कहीं भी कबीर नहीं थे। केवल पाठ्यक्रम था और पढ़ाने की नौकरी थी। कबीर और उनकी साखी जहां थी वहां तो हम पहुंचे ही नहीं। इसलिए दस हजार विद्यार्थियों को पढ़ाने के उपरांत भी कबीर के साथ हमारा 'सत्संग' नहीं हुआ। आप सबकी भी यही दशा है।

सत्संग में संत रूह से बोलता है और हम कान से सुनते हैं, यह सत्संग नहीं है। यही कारण है कि दस-बीस साल तक सत्संग में बैठकर भी हम वैसे के वैसे भौतिक ही हैं; तनिक भी रूहानी नहीं हुए। हम सत् से दूर ही रहे। बस हमारे पास किस्से हैं, कहानियाँ हैं, गुट हैं, प्रसादी है, जुलूस है; किंतु सत्संग नहीं है।

अंदर तुम्हारे मोह-माया, लोभ-बेईमानी, छल-कपट है। वहां सत्संग है ही नहीं। तुम माया से छूटना ही नहीं चाहते हो, इसलिए सत्संग को बाहरी ही रहने देते हो। जहां पढ़ा वहीं झाड़ कर चले जाते हो, इसलिए जरूरी है आंतरिक सत्संग। तुम्हारी सोच ही तुम्हें सत्य की तरफ धकेलने लगे तब बात बनेगी। तुम्हारे भीतर ही सत्यानुभूति के लिए कसक जगे तब परिवर्तन होगा। तुम पहले निश्चय करो कि पॉज़िटिव (सकारात्मक) बनना है। तुम पहले अपने आप से ज़िद करो कि आत्मस्वरूप तक पहुंचना है। तुम खुद को सत्संग के लिए तैयार करो; देखा-देखी कहीं मत जाओ। तुम यह मत सोचो कि बाबा जी का सत्संग सुनने से धन मिलेगा, संतान मिलेगी, नौकरी का जुगाड़ हो जाएगा। तुम केवल सत्य को जानने का संकल्प रखो। तुम खुद साकार सत्संग होने का संकल्प करो। तुम अपने कर्तव्य का दायरा अधिकतम सीमा तक फैला दो। यह कर्म वाला सत्संग हो जाएगा। तुम अपने 'मैं'

को पूरे समाज से जोड़ दो; यह सामाजिक सत्संग हो जाएगा। तुम अपने 'खुद' को ईश्वर में लीन कर दो; यह परम सत्संग होगा। तभी कल्याण होगा, तभी सत् के आनंद की अनुभूति होगी।

गौतम बुद्ध ने एक भिक्षुक को उस नगर की सुंदरतम वैश्या के घर पर तीन माह तक साधना करने के लिए भेज दिया। उसे वहां विपश्यना करनी थी; अपने आप में स्थित रहना था। आंतरिक सत्संग में ठहरना था। वह भिक्षुक उस वैश्या के घर रहने लगा। वैश्या का मन उस युवा साधु के तेज पर डोल गया। वह उसके सामने बनती संवरती। वह उस भिक्षुक को उद्दीप्त करने वाली चेष्टाऐं करने लगी। पूरे तीन माह तक वह ‘रति’ बनी रही किंतु साधु निष्काम ही रहा। विदा के दिन वेश्या ने सवाल किया - मैं साक्षात 'विचलन' थी और तुम प्रत्यक्ष 'अविचलन’; ऐसा कैसे संभव हुआ। साधु बोला - मैं बुद्ध के आदेश से अपने ही अंदर स्थित था। तुम वासना से उद्वेलित मेरे बाहर ही बाहर सक्रिय थी। तुम मेरे भीतर नहीं उतर सकी क्योंकि अंदर मैं सत्य के साथ था, निष्काम था; तुम बाहर अज्ञान के साथ थी। उस स्त्री ने साधु को प्रणाम किया और अपना कोठा छोड़कर बुद्ध की शरण में चली गई। सत्संग (उस साधु के साथ) उसके भीतर उतर गया था।

09. मंत्र को सांस के साथ जोड़ो

दीक्षा मंत्र हो या इष्ट मंत्र, उसे सांस के साथ जोड़ना जरूरी है। उसे रटी हुई कविता की तरह बोलना या दोहराते रहने से फल नहीं मिलेगा। प्रत्येक मंत्र की एक लय होती है। श्वास- प्रश्वास की भी लय है। अब या तो मंत्र की लय में श्वास को ढाल लो अथवा श्वास की गति में मंत्र को जोड़ लो। श्वास अंदर ली तो मंत्र का एक जाप पूरा कर लो। ऐसे ही प्रश्वास (सांस बाहर निकलना) में भी एक जाप कर लो।

मंत्र को मुंह से या कंठ से नहीं बोलना है। केवल मानस जाप करना है। कैसे भी बैठ जाएं, कमर सीधी रहे, जीभ को तालु या दांतों पर टिकाकर स्थिर करो। ध्यान आज्ञा- चक्र (ललाट के मध्य में जहां बिंदीं या तिलक लगाते हैं) पर केंद्रित करो। आप सांस के आने जाने पर भी ध्यान लगा सकते हैं। संभव हो तो सांस की टक्कर आज्ञा चक्र पर लगाओ।

सांस को मंत्र से जोड़ लेने का अभ्यास हो जाने के बाद आपको जाप के लिए अलग समय तय करके नहीं बैठना पड़ेगा। सांस चल रही है, तो मंत्र भी चल रहा है। इस तरह मंत्र सिद्धि के लिए जो लाखों आवृत्तियों की जरूरत होती है। वह सहज रूप से पूरी होती रहेगी।

सांस के माध्यम से मंत्र की ऊर्जा शरीर की खरबों कोशिकाओं और अरबों न्यूरॉन्स (स्नायु तांत्रिकाएं) तक पहुंचती हैं। इससे शरीर ऊर्जावान बनता है। मानस जाप करने से मंत्र की शक्ति मन के द्वारा पूरे अंत:करण में व्याप्त हो जाती है। वहां से कारण देह में चित् में जाती है। चित् से आत्मा संज्ञा वाली चेतन ऊर्जा तक पहुंचती है। यही है मंत्र के द्वारा अंत: दर्शन। सांस के साथ मंत्र के प्रबंधन से प्राणायाम एवं ध्यान योग्य का अभ्यास भी होता रहता है। सामान्य मंत्र में जितने अक्षर होते हैं, उतने ही लाख जाप किए जाते हैं।

10. गुरु के बिना कौन बतावै बाट

गुरु बिना कौन बतावै बाट।
बड़ा विकट है, यम घाट॥

मृत्यु से बचने की राह केवल गुरु ही बता सकता है। जीवन का या जन्म का यह दूसरा छोर (घाट) बहुत डरावना (विकट) है। मृत्यु बहुत विकट (जिसे काटा नहीं जा सके, जिससे बचा नहीं जा सके) है। जिस तरह किसी दुर्गम घाटी में से बच कर पार निकलना बहुत मुश्किल है; उस घाटी की राह का कोई विशेषज्ञ ही उस घाटी से हमें पार लगा सकता है। इसी भाँति बार-बार जन्म ले कर बार-बार मरने की विकटता से, बाध्यता से, इस पीड़ा से कोई सदगुरु ही हमें मुक्त कर सकता है।

सद्गुरु हमें अपनी शरण में ले कर पुनर्जन्म से बचा लेगा। जन्म नहीं तो मृत्यु भी नहीं। इस तरह हमें मृत्यु की डरावनी पीड़ा से छुटकारा मिलेगा। गुरु हमें मंत्र देता है। गुरु हमारे संचित पाप कर्मों को काट देने वाली साधना कराता है। गुरु हमारी देह बुद्धि को नष्ट करता है - देह की ही मृत्यु होती है और स्वयं को देह मानने वाले ही इसलिए मृत्यु से डरते हैं। गुरु यह अनुभूति कराता है कि तुम देह नहीं, आत्मा हो। गुरु यह भी प्रत्यक्ष कराता है कि तुम ही ब्रह्म हो। दासी पुत्र सत्यकाम को गौतम ऋषि ने यही साक्षात्कार

कराया था - तत्वमसि; तत् यानी वह ब्रह्म; त्वम् यानी तुम ही; असि यानी हो।

यही बात समझाने के लिए संत कबीरदास ने कहा है कि - गुरु बिना कौन बतावै बाट; बड़ा विकट यम घाट। यदि हम मृत्यु के पार जाने के लिए संकल्पित हैं तो ऐसा अवश्य होगा। चाहो तो गुरु से धन सम्पत्ति मांग लो और चाहो तो उस की कृपा से मृत्युंजय हो जाओ।

11. पलटू अंधियारी मिटी, बाती दीन्ही बार।
दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार॥

पलटू विख्यात संत कवि हुए हैं। वे कहते हैं कि दीपक जलाने से जिस तरह बाहर का अंधेरा मिट जाता है, उसी प्रकार प्रभु नाम के सुमिरन से मन का अज्ञान दूर हो जाता है। अहंकार मिट जाता है। महल का मतलब यहां मन है, हृदय है, अंत:करण है।

लगती तो सीधी सी बात है लेकिन बहुत गहरी है। आप दस बरस से राम-राम का जाप कर रहे हैं, किंतु अंदर का अज्ञान अभी तक नहीं मिटा। तुम अभी भी जाति के आधार पर सोचते हो। तुम अभी भी आर्थिक हैसियत के अनुसार दूसरों से व्यवहार करते हो। तुम अभी भी अनैतिक एवं अवैधानिक ढंग से धन कमाते हो। तुम अभी भी दूसरों को धोखा देते हो। तुम तो दस साल तक भगवान के नाम का सुमिरन करने के उपरांत भी जड़ हो; चेतन हुए ही नहीं, थोड़ा सा भी नहीं चेते, अज्ञान को मिटाने के प्रति जागरूक नहीं हुए।

तुम चाहते हो कि बटन दबाते ही घर में बिजली का उजाला हो जाना चाहिए। तुम चाहते हो कि गुरु-नाम लेते ही हृदय का अज्ञान मिट जाए। तुम्हारा खान-पान, रहन-सहन, उद्योग-धंधे, सोच-विचार आदि तो अज्ञानियों जैसा ही चलता रहे, किंतु अंदर ज्ञान का दीपक जल जाए। ऐसा तो नहीं होगा। कभी नहीं होगा। चाहे कैसे भी गुरु के पास चले जाओ। जैसे स्वस्थ रहने के लिए दवा के साथ पथ्य आवश्यक है, उसी भांति नाम सुमिरन के साथ सदाचरण जरूरी है, संकल्प अनिवार्य है, सात्विक आहार-विहार जरूरी है।

संकल्प ही दीया है, श्रद्धा ही घी या तेल है, नाम ही बाती है। गुरु की कृपा ही उस बाती को 'बारती' है; रोशन कर देती है। गुरु तो खुद जलता हुआ (रोशन) निहित रहता है। इसके लिए तुम गुरु के पास जाओ, श्रद्धापूर्वक बैठो, स्वयं को धो-पोंछ कर जाओ। सचेत रह कर जाओ, आत्मानुभूति के लिए जागरूक रह कर जाओ। उसके पास बैठते ही वह तुम्हारा मंतव्य जान लेगा, जैसा तुम्हारा भाव है वैसे ही कृपा करेगा। कृपा करना उसका स्वभाव है। जो शिष्य आत्मज्ञान के लिए गुरु के पास जाता है, गुरु उसका दीपक 'बार' देता है।

गुरु जो शब्द (नाम) देता है उस शब्द में अर्थ रहता है। वह अर्थ ही 'उजियारा' है। उस अर्थ में प्रवेश करते ही रोशनी फूटती है। उस आलोक में तुम्हारा सत्य दिख जाएगा। तुम्हारी आत्मा दिख जाएगी। आत्मा में परमात्मा दिख जाएगा। तुम्हारा 'मैं' महल रोशन हो जाएगा। तो गुरु शब्द देता है, सुमिरन से शब्द में निहित परम अर्थ खुलता है। इसी को मंत्र की सिद्धि कहते हैं। पलटू साहब ने इसी को 'दीपक बारा नाम का' कहा है। जब तक शब्द का अर्थ नहीं खुला, तब तक दीपक नहीं जला। तब तक अंधियारा ही है। यही कारण है कि साधना काल के दौरान अनेक मुरीद भटकते रहते हैं। जब तक बत्ती जलेगी नहीं, अंधेरा दूर नहीं होगा। तुम्हारे पास दीया है, उसमें तेल है, बाती भी है लेकिन जलाने के लिए माचिस नहीं है। कोई दूसरा रोशन दीया भी नहीं है। ऐसे में अंधेरा ही रहेगा। नाम का अर्थ जब तक नहीं खुलेगा तब तक अज्ञान कायम रहेगा। तब तक मनुष्य भटकता रहेगा। तो गुरु तुम्हारे दीये को जलाएगा; उसकी ही कृपा से नाम का अर्थ खुलेगा।

गुरु ने अपने ज्ञान रूपी दीपक की 'लौ' से शिष्य का शब्द रूपी दीया 'जला' दिया। फिर उसी प्रकाश के सहारे वह मुरीद उस उजाले में पहुंच गया जहां अनहत् नाद है; जहां शून्य है। जहां वस्तु नहीं है, इच्छा नहीं है, शरीर नहीं है और शरीरधारी संबंध भी नहीं है। अब आलोकित हृदय है, अब मनुष्य का निष्काम अस्तित्व है, अब जाति, धर्म, नाम, उपाधि नहीं है। अब देहधारी ज्ञान है, देहधारी परमात्मा है, देहधारी विराट है। गुरु देह नहीं - ज्ञान, भक्ति और योग का साकार रूप है। साकार यानी देहधारी रूप। 'महल भया उजियारा' का यही अर्थ है।

रोटी, कपड़ा, मकान देने वाली सिद्धियां अलग होती हैं। वहां ज्ञान का दीपक नहीं है; चमत्कार है। प्रभु के दर्शन में गुरु तुम्हें बाहरी वस्तु नहीं देता है; जो आत्मा तुम्हारे अंदर पहले ही है, उसे दिखा देता है। ऐसा 'उजाला' कर देता है कि उसमें तुम्हें अंतस्थ आत्मा के 'दर्शन' हो जाएँ।

12. ओम् नमो भगवते वासुदेवाय

इस महामंत्र के प्रेरक ऋषि नारद जी हैं। उन्होंने इस मंत्र को प्रत्यक्ष किया था। वे इसके द्रष्टा हैं। इसमें 12 अक्षर हैं - पंच महाभूत, पंच तन्मात्रा (सूक्ष्म तत्व), मन, बुद्धि, अहंकार के नियंत्रक। 10 दिशाएं तथा जीव एवं जड़ जगत के कुल 12 प्रबंधक। मनुष्य को 12 राशियों के दुष्प्रभाव से मुक्त करने वाले अक्षर ब्रह्म् वाली शक्ति।

भगवते यानी साक्षात् भगवान का रूप। छान्दोग्य उपनिषद् में आठ शक्तियों का उल्लेख है जो भगवान में होती हैं - पूर्ण ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, यश, सौंदर्य, विरक्ति, अजरा और अशोक! किंतु वस्तुतः तो गीता में दसवें अध्याय के 40वें श्लोक के अनुसार भगवान में अनंत गुण विभूतियां हैं। भागवत् पुराण में उल्लेख है कि धरती पर जितने रज कण हैं, उनसे भी अधिक विभूतियां भगवान में हैं। ऐसे ही वासुदेव के अनेक अर्थ हैं। 1) भगवान श्रीकृष्ण २) वसु यानी जीवनी शक्ति से युक्त संपूर्ण जीव जगत के स्वामी। 3) वसु आदि 33 देवताओं (आठ वसु, 12 आदित्य, 9 रूद्र, इंद्र, प्रजापति ब्रह्मा) के स्वामी ४) आठ वसु (आप या अप जल, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रतुषऔर प्रभाष) धरती के देवता कह गए हैं। वासुदेव इन सबके स्वामी हैं। 5) जो 18000 श्लोकों वाली भागवत पुराण के साकार रूप हैं 6) भागवत पुराण के अनुसार ही प्रत्येक अक्षर में वासुदेव भगवान हैं (शब्द ब्रह्म)। 7) जो नर के नारायण हुए हैं। जो विष्णु, नारायण-रूप एवं गीता में परब्रह्म के पर्याय हैं।

इसलिए यह मंत्र मुक्तिदायक कहा गया है। 12 लाख जाप से सिद्ध होता है।

अर्थ - दृश्य-अदृश्य ब्रह्मांड में प्रणव रूप में व्याप्त है शब्द ब्रह्म (ओम्)। मैं आपकी साक्षी में इस महामंत्र का जाप करता हूं; मुझ पर भगवान वासुदेव की कृपा करवाओ। मैं नमन करता हूं, अपने अहंकार को छोड़कर प्रभु वासुदेव की शरण में जाता हूं। क्यों? इसलिए

कि वह मेरे दोषों को क्षमा करें और मेरी आध्यात्मिक उन्नति करें। प्रभु वासुदेव की कृपा से धरती के देवता (आठों वसु) हम पर दया करें। मुझे अपने नर रूप में नारायण का प्रत्यक्ष कराएं। मैं वासुदेव के सर्वव्यापी ब्रह्म् रूप के दर्शन कर सकूं। भागवत पुराण के साकार रूप हैं वासुदेव। मुझे जन्म-मरण के चक्र से मुक्त करो। इस मंत्र के माध्यम से 33 कोटि (प्रकार के) देवता मेरा प्रणाम स्वीकार करें। मैं संपूर्ण जीव-जगत में आपके स्वरूप के दर्शन करते हुए अनाचरण, कदाचरण, पापाचार एवं नैसर्गिक विकारों से बचा रहूँ; ऐसी इस दीन पर कृपा कीजिए।

13. गीता के अनुसार गुरु कौन

गीता में चौथे अध्याय के 31, 32वें श्लोक में यह समझाया गया है कि गुरु कौन है। श्रीकृष्ण के कथन का सार इस प्रकार है - आत्मज्ञान में स्थिर वह महात्मा जो दूसरों को भी परम का बोध करा सके। ऐसा गुरु जो शिष्य की कुंडलिनी शक्ति जागृत करके उसे वैश्विक चेतना से जोड़ दे। ऐसा संत जो शरणागत के सारे संचित भोग-संस्कारों से उसे मुक्त कर दे। ऐसा फकीर जिसकी नज़र से मुरीद के कर्तापन का अभिमान और भोक्ता होने की आसक्ति तिरोहित हो जाए।

18वें अध्याय के 66वें श्लोक में श्रीकृष्ण कहते हैं कि तू मेरी शरण में आजा; मैं तुझे सारे पापों से मुक्त कर दूंगा। महात्मा या गुरु भी वह जो शिष्य के साथ ऐसा ही करें। श्री कृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से मनुष्य को ऐसे गुरु के पास जाने के लिए कहा। वर्तमान काल के दौरान अनेक गुरु या महात्मा हुए हैं - सर्व श्री श्यामाचरण लाहीड़ी, मां आनंदमयी, देवरहा बाबा, नीम करोली बाबा, मुंशी रामचंद्र जी, निज़ामुल हक कलंदर आदि।

14. साधना, थ्योरी नहीं; प्रैक्टिकल वर्क है

साधना यानी तन-मन को साधना, अनुशासित करना। अनुशासन यानी अभ्यास - सीधे बैठने का अभ्यास, कम खाने, कम बोलने, कम सोने आदि का अभ्यास। इंद्रियों को स्वाद की तरफ भागने से रोकने का अभ्यास। कर्तव्य एवं सेवा कर्म का अभ्यास। केवल नाम सुमिरन से काम नहीं चलेगा। केवल माला जपने से बात नहीं बनेगी। संत महात्माओं के किस्से सुनने-सुनाने से भी बोध नहीं होगा। हम पहले ही बात

कर चुके हैं कि साधना रूहानी कर्म है। कर्म यानी भी अभ्यास। गुरु द्वारा बताई हुई बातों को खुद करके देखना है। स्वयं प्रयोग करके समझना है। गुरु ने कहा कि सांस की लंबाई कम करो; तो छोटी सांसों का अभ्यास करना है। लगातार छोटी सांस लेनी है। गुरु ने समझाया कि आज्ञा चक्र पर ध्यान टिकाओ; तो वैसा ही करना है, निरंतर करना है। 10 दिन करके छोड़ दिया तो बात बिगड़ जाएगी। साधना ठहर जाएगी। साधना का सफर लंबा है। थ्योरी नहीं, एक्शन है, प्रैक्टिकल है। ऐसा प्रैक्टिकल स्वयं गुरु अपनी नज़र में ही रखते हुए कराता है। जब तक देह में है तब तक तो करना ही है, किंतु रूहानी पुरुष हो जाने के बाद भी मुरीद उसकी नज़र में ही रहता है। तब ध्यान अवस्था में रूहानी निर्देश देता है।

इसलिए नाम मिल जाने को ही पूरी कृपा मत समझो। जप के साथ तप भी जरूरी है। तप के साथ आसन, ध्यान, धारणा, आचरण आदि का प्रैक्टिकल अभ्यास आवश्यक है। गुरुदेव हज़रत हरप्रसाद मिश्रा जी ने एक बार दिखा दिया कि साधना का अंतिम बिंदु प्रकाश है। सिर में सबसे ऊपर प्रकाश का गोला है। फिर कहा - अब खुद वहां तक जाओ। इसके लिए जरूरी अभ्यास करते रहो - ब्रह्म् मुहूर्त में साधना, श्वास पर नियंत्रण, पूरे शरीर में वाइब्रेशन को देखना, स्वाद छोड़ना, कम बोलना, नाद सुनना, मनोजगत में गुरु से जुड़े रहना आदि। यह सब प्रत्येक साधक के लिए है। जो कोई भी आगे बढ़ना चाहता है, उसके लिए यह प्रक्रिया अनिवार्य है। तुम अमेरिका का नक्शा अपने दिमाग में याद कर लो। इसका अर्थ यह नहीं कि तुमने वह देश देख लिया, वहां जाओगे तभी उसे देखना होगा। ऐसे ही सत्य तक पहुंच जाओगे तभी सत्य का बोध होगा। देहधारी गुरु की सीमा पार करते हुए चेतन गुरु या रूहानी गुरु तक पहुंचोगे तभी वह आंतरिक यात्रा में बहुत दूर तक साथ चलेगा और गूढ़ बातें समझाएगा।

एक दृष्टांत - किसी आश्रम में कुछ शिष्य झाड़ू लगा रहे थे। एक शिष्य को गुरु जी ने पूछा कि झाड़ू लगाने का मतलब जानते हो? आश्रम में झाड़ू लगाने का रहस्य समझते हो? फिर कहा झाड़ू की एक-एक सींक बोलती है। नाम बोलती है। तुम प्रत्येक सींक की आवाज में नाम सुनो तब झाड़ू की सार्थकता है। मान लो एक झाड़ू में 100 सींक है। तुमने एक बार झाड़ू फेरी तो 100 नाम हो गए। तुमने कुल 50 बार झाड़ू फेरी तो 50000 नाम हो गए। इसलिए झाड़ू लगाते या बर्तन धोते वक्त मन को नाम सुमिरन की तरफ एकाग्र रखो। इस दृष्टांत में श्रमदान वाले कर्म का रहस्य निहित है।

एक थे महात्मा कुंभाराम जी। 500 वर्ष की आयु के बाद पर्दा किया। उन्होंने अपने एक शिष्य सेवाराम को 30 साल तक साधना कराई - पानी में, तपती रेत पर, सुनसान जंगल में, आश्रम में, शोरगुल के मध्य अभ्यास कराया। शास्त्र समझाया, जड़ी-बूटियों का ज्ञान कराया, योग-अभ्यास कराया, भूख-प्यास सहन करने की विधि बताई। जंगल में रहना सिखाया, फिर दीक्षा दी - जाओ लोगों की सेवा करो! पैसे किसी से मत लेना, यह है साधना का प्रैक्टिकल दृष्टांत। मैं उनसे मिला था; किसी श्रमिक जितना सामान्य जीवन और सेवा भाव से सराबोर थे। वे महात्मा पराशक्ति के साकार रूप थे।
तो अपनी साधना को थ्योरी से बाहर निकलने दो; रूहानी अभ्यास करते रहो; गुरू को साथ रखो; संकल्प को कमजोर मत होने दो। कल्याण अवश्य होगा।

15. सांस को देखो, श्वास को सुनो और ईश्वर की अनुभूति करो

गुरुदेव ने एक बार कहा - तुम्हें अपनी सांस तो दिखती नहीं है, फिर भगवान कैसे दिखेंगे? बात तीखी थी; चुभनी थी, चुभ गई। लेकिन यह सत्य है। उस विश्वव्यापी निराकार ब्रह्म के साकार विराट रूप या चतुर्भुज रूप के दर्शन तो देह से बहुत ऊपर की बात है। फिर बोले कि वहां तक पहुंचने के लिए ही योगी-महात्मा एक सरल उपाय बताते हैं। आरंभ में अपनी ही श्वास को देखो। श्वास का आना-जाना देखो। गहरी-लंबी सांस को देखो। दौड़ते हुए फूलती श्वास को देखो। सोए हुए मनुष्य की सांस देखो। तुम जब ध्यान में बैठते हो तब तुम खुद की सांस को देखो। फिर गिनो कि प्रति मिनट कितनी चलती है।

ऐसा करते-करते सांस पर ध्यान टिकेगा। अब दिखेगा कि सांस का रंग नीला है। यह दिखेगा कि श्वास के आने-जाने से खड़े अंडे जैसी आकृति बनती है। अपनी ही सांस जब ऐसे दिखने लगे तो मज़ा आता है। उसे ही देखते रहने के लिए मन मचलने लगता है। यह अच्छी बात है। श्वास को और अधिक ध्यान से देखो, अब उसमें कुछ सुनाई देगा। शुरू में घर्षण की ध्वनि सुनोगे। समझ में नहीं आएगा कि यह क्या है, लेकिन अभ्यास मत छोड़ो। ध्यान जब पूरी तरह सांस पर टिकने लगेगा तो अंदर जाती श्वास में 'सो' सुनोगे और बाहर निकलते हुए 'हं' सुनाई देगा। आनंद बढ़ जाएगा। अपनी ही सांस में नीला रंग एवं सोहम् की गूंज। इसे कहते हैं श्वास को देखना। 6 माह तक रोज 10 मिनट ऐसा अभ्यास करो।

श्वास में यह सोहम् कहां से आया? ब्रह्मांड से आया। ब्रह्मांड में ओम का सनातन नाद है। यही नाद हमारे शरीर में घर्षण के साथ प्रवेश करता है तो 'ओ' हमें 'सो' के जैसा सुनाई देता है; और बाहर निकलते हुए सांस में हम 'हं' या 'हम्' सुनते हैं। ओम का ही म हमें 'हम्' या 'हं' के जैसा श्रुतिगोचर होता है। इस सोहम् में मिठास है। इस नाम में माधुर्य है। इसमें मन मस्त हो जाता है।

यही सांस इसी सोहम् के सहारे धीरे-धीरे सर्वव्यापी ओम् वाले नाद से जुड़ जाता है। साधक तब अपने चिदाकाश में ओम् का नाद सुनता है। इस नाद में चित, मन, बुद्धि, अहंकार अपनी जड़ता को भूल जाते हैं; तब चेतन स्वरूप में ठहर जाते हैं। अब खुद के ही अंदर ओम् की ज्योति फूटती है। फिर जन्म-जन्मांतरों के संस्कारों के अनुसार भगवान के साकार दर्शन होते हैं। शैव को शिव रूप, वैष्णव को राम-कृष्ण, शक्ति को देवी रूप व अन्य सबको इसी के अनुसार अपने-अपने इष्ट के दर्शन सुलभ होते हैं। यह मात्र दर्शन है, एकरुपता नहीं।

16. लागी लागी सब कहिन, लागी लागी नाहीं।
लागी तो तब जानिए, लागी हो मन माहीं॥

यह सीधी चोट है, कलेजे पर चोट है। आडम्बर पर पर चोट है, भक्ति के ढकोसले पर चोट है। नाम-सुमिरन के दिखावे पर चोट है। कबीर तो ढोंगियों को फटकारते हैं। कबीर आडम्बर को लताड़ते हैं। वे खरे हैं, उनकी इबादत खरी है, उनकी हर बात खरी है। कहीं लपट जैसी, कहीं तलवार जैसी। यहां भी ऐसा ही तेवर है।

लागी लागी सब कहिन - सारे लोग कहते फिरते हैं लागी लागी यानी भगवान के साथ लगन लग गई है। गुरु के साथ लगन लग गई है। किंतु वास्तव में वे सब झूठ बोलते हैं। लगन (लागी) अभी तक लगी नहीं है। अभी तो दुनियादारी से लगन है। अभी तो कंचन-कामिनी से लगन है। अभी तो मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठा से लगन लगी हुई है। अभी भगवान या गुरु के साथ भी लालच की लगन है; भक्ति की नहीं। अभी तो ईश्वर से भी आस, औलाद चाहते हैं। शादी-ब्याह मांगते हैं; रोटी, कपड़ा, मकान मांगते हैं। इसीलिए 'लागी लागी' नाहीं।

लागी तो तब जानिए - लगन लगी हुई हो तब समझो जब मन प्रभु की भक्ति में लग जाए। गृहस्थी के काम चलते रहें किंतु मन भगवान की तरफ ही लगा रहे। हर पल याद रहे कि परमात्मा देख रहा है। कबीर कहते हैं कि 'लागी' हो मन माहीं - मन इबादत में लग गया है। मन दुनियादारी से उलट कर सुमिरन में डूब गया हो, मन अपनी श्वास-प्रश्वास में हरि नाम सुनने लगा हो। हमारी सच्चाई तो यह है कि राम भी मुंह में, स्वाद भी मुंह में। माला हाथ में और बेईमानी भी हाथ में। प्रभु का ध्यान भी दिमाग में, वासना भी दिमाग में। ऐसा नहीं चलेगा, लगन तो एक ही से लगती है; दो में तो मक्कारी है। भक्ति और भोग; दोनों में एक साथ लगन कैसे लगेगी। स्वाद को शरीर तक रहने दो; मन तक मत पहुंचने दो। भोग इंद्रियों का कर्म है; मन का नहीं। मन का स्वाद तो परमानुभूति है। मन उसके लिए ही विकल रहता है। हम अज्ञान के कारण उसे स्वाद से जोड़ देते हैं।

महाराज ऋषभदेव अपनी रंगशाला में नर्तकी का नृत्य देख रहे थे। अचानक ही नर्तकी जमीन पर गिर गई और मर गई। महाराज के मन पर नश्वरता की चोट लगी। वे उठे, राजपाट छोड़ दिया और भक्ति के लिए वन में चले गए। लगन ऐसी लगी कि ये महाराज जैनियों के प्रथम तीर्थंकर बने। लगन राजा भर्तहरी को लगी और सिंहासन त्याग कर जोगी हो गए; इच्छाधारी बाबा हो गए। लगन मीरा को लगी; महल छोड़कर सड़क पर नाचने लगी। उसे साक्षात् कृष्ण ने अंगीकार किया। लगन राजा जनक को लगी; राजमहल में ही चटाई पर सोने लगे। मिट्टी के बर्तन में सादा भोजन करने लगे और गृहस्थी में ही योगीराज हो गए। लगन कबीर को लगी; घर में ही भक्ति करी और बोले - जाप हमारा राम करे, हम बैठे आराम करें। इसका मतलब यह है कि उनकी सांस में ही नाम चलने लगा। जपे बिना ही जाप होने लगा।

भक्ति की ताप जब मन में बढ़ती है तो बाहर के सारे विकार भस्म हो जाते हैं।

17. नाम दिया अथवा नाम खोल दिया

सुमिरन करने वालों के लिए, नाम जप करने वालों के लिए आज एक खुलासा करते हैं। आप किसी 'गुरु' के पास गए और उसने तुम्हारे आंतरिक उद्देश्य के अनुसार तुम्हें नाम दिया। आंतरिक उद्देश्य चार प्रकार के होते हैं। 1) आर्थिक समृद्धि। 2) कष्ट या

समस्या का निवारण। 3) रूहानी जिज्ञासा - आत्मा क्या है, भगवान क्या है, आत्मानुभूति क्या है आदि। 4) जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति। शुरू वाले दो मतलब पूरे करने के लिए सिद्धि की शक्ति काम करती है। न आपको रूहानियत चाहिए और ना ही गुरु ने कोई रूहानी कर्म किया है। जो आपने मांगा उसने दे दिया। मंत्र का जाप करना पड़ता है। यंत्र को दुकान के गल्ले में अथवा घर की तिजोरी में रख दो। तुमने धन के लिए गुरु की छवि को दुकान पर बिठा दिया; अब रूहानियत कैसी?

तीसरे और चौथे स्तर पर गुरु रूहानी नाम देता है - आध्यात्मिक उन्नति करने वाला नाम देता है। ऐसे नाम में रूहानी ज्योति व्याप्त रहती है। ऐसे नाम में ईश्वर तक ले जाने वाला मार्ग बिछा हुआ रहता है। अब गुरु आपकी कोशिश के अनुसार कर्म करता है। केवल जिज्ञासा है तो नाम देकर आगे बढ़ा देता है। तुम जितना जाप करोगे उतना ही फल मिलता रहेगा। जाप के साथ आचरण को भी अनुशासित करना पड़ेगा। यों समझो कि रोग निवारण के लिए दवा के साथ पथ्य का पालन भी अनिवार्य होता है। इसी तरह रूहानी प्रगति के लिए मंत्र का जाप करने के साथ-साथ सदाचरण भी आवश्यक होता है। गुरु की नज़र रहती है और प्रगति होती रहती है। अब चौथे स्तर पर तो गुरु दीक्षा मंत्र को मुरीद के हृदय में खोल देता है। नाम का अर्थ और उसकी महिमा, उसका असर, उसका वैभव आदि सब कुछ चिदाकाश में दिखा देता है। मुरीद की रूह को नाम के उस वैभव के साथ जोड़ देता है। फिर कहता है कि अपने संकल्प और हमारे कर्म के संयुक्त परिश्रम से वहां तक खुद चल कर जाओ। ऐसे साधकों के लिए जाप-कर्म संबंधी कठोर नियम होते हैं। उन्हें थोड़ी सी भी छूट नहीं दी जाती है। उन्हें लगातार गुरु की नज़र में रहना होता है। उन पर अन्य महात्माओं की दृष्टि भी रहती है। इन्हें रूहानी मुकाम दिखने लगते हैं। इन पर आंतरिक नशा छाया रहता है। इनकी साधना तलवार की धार पर चलने जैसी होती है। गुरु का रक्षा कवच उनके साथ रहता है।

इन चार स्तरों के अतिरिक्त एक अन्य अवस्था भी होती है - गुरु अपनी शक्ति उस साधक में उतार देता है। कॉलेज में पढ़ाई कराए बिना ही डिग्री दे देता है। ये साधक सीधे आज्ञाचक्र से साधना आरंभ करते हैं। जिस अवस्था में तीसरी आंख खुल जाती है, उसे आज्ञा चक्र की सिद्धि कहते हैं। ऐसे साधक बहुत जल्दी अनुभूति तक पहुंच जाते हैं।

18. मृत्यु रूपांतरण है, समाप्ति नहीं

संसार में कुछ भी नहीं मरता है; केवल रूपांतरित होता है। सारे जड़ पदार्थ भौतिक ऊर्जा के रूपांतरण हैं। ऐसे ही समस्त जीव, चेतन ऊर्जा या चेतन शक्ति के रूपांतरण कहे जाते हैं। मृत्यु हमारा रूपांतरण है, समाप्ति नहीं। हम लोग रूपांतरित होते रहने को मृत्यु कह देते हैं। ऐसे रूपांतरण से बचना ही मुक्ति है। जब कोई भोग बाकी नहीं तो पुनर्जन्म वाला रूपांतरण भी नहीं।

रूपांतरण के लिए ही जन्म लेना पड़ता है। बार-बार जन्म-मृत्यु, बार-बार निर्माण-ध्वंस। जन्म-मृत्यु जीव जगत में और निर्माण-ध्वंस जड़ जगत में। हम सब अपने एक ही जीवन में खुद के ही अनेक रूपांतरण देखते हैं; शिशु, बालक, किशोर, युवा, प्रौढ़, वृद्ध आदि। हम बूढ़े होना नहीं चाहते, किंतु होना पड़ता है। हम मरना नहीं चाहते, पर मरना पड़ता है। हम पुनर्जन्म नहीं चाहते, किंतु वैसा होता है। जड़-जगत में भी ऐसा होता रहता है, किंतु वहां सोच नहीं है। ध्वंस से डर नहीं है। पुनः निर्माण की चिंता नहीं है। मनुष्य में सोच है, भाव है, संकल्प- विकल्प है। मनुष्य अपनी मृत्यु से डरता है, इसीलिए मृत्यु से बचने का विचार विकसित हुआ। तब कहा गया कि जन्म नहीं तो मृत्यु भी नहीं। इसलिए पुनर्जन्म से बचो। हमारे ब्रह्मऋषि और उनके महात्मा ऐसी अवस्था तक पहुंचे हैं। उनका पुनर्जन्म नहीं और इस कारण मृत्यु नहीं। यह अमरत्व है।

हम भी ऐसा कर सकते हैं - देह के लिए घातक चीज़ नहीं खाएं और जो कर्म जीवात्मा के लिए ‘पातक’ (उसका पुनर्जन्म कराने वाले) हैं, वह कर्म नहीं करें। गुरु यही समझाता है तथा इसके लिए प्रभावशाली विधि बताता है। हमें उस विधि के अनुसार अपनी जीवन शैली में रूपांतरण करना पड़ता है। अन्यथा किसी गुरु के पास जाना व्यर्थ है।

19. मन तो जाप करे, तन भी जाप करे

मन के स्वभाव को बदलो मत, उसे जाप में लगा दो। ऐसे ही शरीर को तपाओ मत, उसे भी जाप में लगा दो। इसे समझते हैं: -

1.) साधना के दौरान सबसे बड़ी बाधा यह होती है कि जितनी देर हम साधना अवस्था में हैं उतनी देर तो सात्विक रहते हैं, फिर वापस रजो व तमोगुणी हो जाते हैं। और ज्यादा विचारणीय बात यह है कि आज्ञाचक्र पर रहते हुए या जप-तप में बैठे हुए तो हम अनासक्त हैं; लेकिन वहां से हटते ही दुनियादारी में आसक्त हो जाते हैं। इसी कारण साधकों के लिए सदाचरण अनिवार्य बताया गया है।

2.) साधना का प्रभावी आरंभ तब मानो जब दीक्षा मंत्र आपके अंदर सुनाई देने लगे। यह तब ही होगा जब आप मंत्र का जाप धुन में करेंगे। सांस की लय के साथ मंत्र की लय बना लें अथवा मंत्र की धुन के अनुसार श्वास-प्रश्वास का अभ्यास करें। यह धुनात्मक मंत्र चिदाकाश में गूंजता है और आज्ञाचक्र या कपाल में सुनाई देता है। ऐसा भी कह सकते हैं कि उसे हम सूक्ष्म कान से सुनते हैं। हमारी पांचो स्थूल ज्ञानेंद्रियों के सूक्ष्म रूप विज्ञानमय कोष में होते हैं। विज्ञानमय कोष हमारे हृदय में होता है।

3.) साधना पथ पर आगे बढ़ते समय संयम जरूरी है - भोग नहीं, स्वाद नहीं, मानसिक व्यभिचार नहीं, तन-मन का उद्दीपन करने वाली वस्तुएं नहीं, कुसंग भी नहीं।

4.) साधना में निरंतरता व नियमितता का महत्व होता है। मन इधर-उधर जाता है तो जाने दो। मन का ऐसा स्वभाव है। आप उसे बदल नहीं सकते। पानी ढलान में बहेगा, हवा कम दबाव की तरह बहेगी और अग्नि ईंधन को भस्म करेगी ही - यह उनके स्वभाव हैं। यह मन भी जब परम से विमुख होकर संसार की तरफ प्रवृत हुआ तभी तो तुम्हारा जन्म हुआ। अतः यह तो अपनी आदत के अनुसार स्वाद की तरफ जाएगा। तुम स्थिर हो जाओ। साधना के द्वारा प्राण को आज्ञाचक्र पर ठहरा दो। तब ही मन ठहरेगा; अपने आप स्थिर होगा। उसे भी साधना का चस्का लगा दो। उसमें भी भजन की आदत विकसित करो। ऐसा निरंतरता व नियमितता से ही हो पाएगा।

5.) आगे बढ़ने पर शुरुआती नज़ारे छूट जाते हैं। तब ऐसा मत समझो कि तुम फेल हो गए। उनकी जगह अब होनी दिखने लगेगी। अब ध्यान अवस्था में रूहानी निर्देश मिलने लगेंगे। अब गुरु के अलावा अन्य महात्माओं की कृपा भी होने लगेगी। सहायक मंत्र मिलने लगेंगे।

6.) ऐसा लगेगा कि दो आंखें तुम्हें लगातार देख रही हैं। तुम अब रूहानियत के कैमरे की पकड़ में हो। इसलिए पल-पल सावधान रहना है, सचेत रहना है।

7.) जाप को ध्यान से जोड़ना है। जाप पर ही ध्यान टिक जाए अथवा ध्यान में ही जाप चलता रहे। देह की वृति भी जपमय होने लगती है। तन-मन दोनों जाप करने लगते हैं। दोनों स्थिर रहने लगते हैं। परिणामस्वरुप मौन बढ़ जाता है।

8.) कुंडलिनी शक्ति रीड़ की हड्डी से ऊपर की तरफ सरकने लगती है। तब मन ध्यान में स्थित रहने लगेगा। नाम भी उसमें धड़कने लगेगा। कई तरह की ज्योतियां फूटने लगेगी।

20. कीर्तन भी उस पार की अनुभूति कराता है

चैतन्य महाप्रभु कीर्तन करते-करते तर गए। वैष्णवों में कीर्तन और सूफियों में कव्वाली का इसलिए बहुत महत्व है। कीर्तन मनुष्य के मन को अतिचेतन अवस्था तक ले जाता है और वहां अनंत की अनुभूति करा देता है। रात 2:00 बजे से सुबह 5:00 के बीच यह रहमत अधिक होती है। उस दौरान वायुमंडल में दिव्य आत्माओं का विचरण होता है।

यह हमें समाधि तक ले जाने का सरल साधन है। कीर्तन ध्वनि योग - यह शब्द कृत या कित् से बना है। इसका अर्थ है - उच्चारण, बोलना। एक ही शब्द या मंत्र अथवा ईश्वर के गुण बार-बार बोलना, दोहराना, लय में गुणगान करना, एक गायक के पीछे सामूहिक रूप से गायन करना। देवर्षि नारद से शुरू इस कीर्तन योग को मानसिक एवं परम शांति अर्जित करने के लिए सरलतम, किंतु सशक्त माध्यम माना जाता है।

कीर्तन के लिए संयोजित मंत्र के अक्षर व शब्द चेतन होते हैं। प्रत्येक अक्षर वाइब्रेट (कंपन) करता है। संयोजित शब्दों का एक धुन में लय के साथ गायन किया जाता है। साथ में संगीत भी होता है तो शब्द, धुन, लय एवं संगीत के संयुक्त प्रभाव से उस जगह रोमांचकारी वाइब्रेशन का घेरा बन जाता है। इसके प्रभाव से संकीर्तन के सहभागी भाव-विभोर हो जाते हैं। कुछ का कोई सूक्ष्म चक्र उद्दीप्त हो जाता है और वह रूहानी मस्ती में डूब जाते हैं। यही अवस्था आत्म योग है; स्वयं के अंदर वाले जीवात्मा से जुड़

जाना! जब यही कीर्तन स्वयमेव अंदर होने लगता है तो समवेत रूप में यह 'नाद' बन जाता है। तब जीवात्मा का 'जीव' तिरोहित हो जाता है। केवल समष्टि अहम् यानी आत्मा रह जाता है - परम शांति, परमानंद। यह योग है - समष्टि 'मैं' से जुड़ जाना; स्वंय के दिव्य मैं का भी तिरोहित हो जाना; सोहम्।

21. जीव, आत्मा, संस्कार और स्वभाव - I

जिस ऊर्जा से कोई जीव जीवित रहता है, उसे जैव ऊर्जा कह सकते हैं। विज्ञान इसे जीवद्रव्य यानी प्रोटो प्लाज्मा कहता है। यह जीवद्रव्य प्राकृतिक तत्वों से बनता है - कार्बन, प्रोटीन, अमीनो एसिड आदि। इसमें प्राण या चेतना का संचार कैसे होता है यह विज्ञान को नहीं पता। इस जीव द्रव्य से हमारी खरबों कोशिकाएं जीवित रहती है। किंतु इन सब पर प्राण का नियंत्रण रहता है। प्राण के बिना यह जीवद्रव्य बहुत शीघ्र विघटित हो जाता है और कोशिकाएं मर जाती है।

मानव द्रव्य का एक हिस्सा मस्तिष्क की ज्ञान चेतना। इसमें लाखों कोड हैं। इन्हें हम ज्ञान कोश भी कह सकते हैं। सारे के सारे कोष किसी के भी नहीं खुलते हैं। वैज्ञानिक, डॉक्टर, साहित्यकार, संगीतकार आदि के ज्ञान कोष पृथक होते हैं। भारतीय मान्यता के अनुसार 14 कलाएं एवं 64 विद्याएं होती हैं। इन सबमें पारंगत कोई भी नहीं हो सकता है। तो अलग-अलग लोगों के अलग-अलग ज्ञान कोष किस आधार पर खुलते हैं? निश्चय ही हमारे संस्कारों के आधार पर ही ऐसा होता है। मतलब यह है कि सुख-दुख की तरह ज्ञान-विज्ञान भी संस्कारों के साथ आता है। जन्म के बाद अच्छा परिवेश मिल जाता है, तो यह विकसित हो जाते हैं। संस्कारों की परिपक्वता के लिए अच्छे परिवेश की जरूरत होती है। भोजन शरीर की खुराक है तो परिवेश संस्कारों की खुराक हैं। अच्छा परिवेश बुरे संस्कारों को साफ करता है। लेकिन जब बुरे संस्कार ज्यादा प्रबल होते हैं, तो स्वस्थ परिवेश भी इन्हें साफ नहीं कर पाता है।

खैर, बात ज्ञान कोषों की चल रही है। इनका संबंध गुणसूत्र से है। यह माता-पिता के जरिए संतान में आते हैं। इनका आधार हमारे कर्माणु हैं। गुणसूत्र कितने सूक्ष्म होते हैं, इसका अनुमान यह जानकर लगाइए कि एक कोशिका में 25000 जींस हो सकते हैं और ऑलपिन की कैप जितनी सी जगह में 8000 कोशिकाएं रखी जा सकती हैं। प्रत्येक जीव

एक गुणसूत्र है। गर्भावस्था के दौरान शिशु को प्रतिदिन मां से 25 लाख कोशिकाएं मिलती हैं। सूक्ष्म शरीर में जैसे कर्माणु होते हैं, उन्हीं के अनुरूप गर्भ मिलता है। तो जैसे कर्माणु वैसा गर्भ, जैसा गर्भ वैसे गुणसूत्र, जैसे गुणसूत्र वैसे ही ज्ञान कोष और जैसा ज्ञान कोष वैसी ही बुद्धि! ...पुरुष के एक्स क्रोमोसोम पर एक वंशाणु (एस आर वाय) होता है। यह यथावत संतान में जाता है। 20-25000 वर्ष तक भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। इसी की मदद से गोत्र पुरुष का पता लगाया जाता है। यह सारा मामला इतना बारीक है कि इसे केवल समझा जा सकता है; देखना असंभव है। जैसे पानी की एक बूंद छोटी-छोटी तीन लाख जल कणिकाओं से बनती है। उन जल कणिकाओं को हम अपनी आंखों से नहीं देख सकते हैं। ऐसे ही मस्तिष्कीय ज्ञान कोष भी दिखते नहीं है। यह ज्ञान-कोष परमाणुओं से एक्टिवेट होते हैं। जिस तरह आज की सेवन स्टार (seven star) होटल में ठहरने के लिए आम आदमी की औकात नहीं होती है, वह उस होटल का खर्चा बर्दाश्त नहीं कर सकता है; ऐसे ही प्रारब्ध से प्रभावित कर्माणु अपनी नियति से बाहर वाले ज्ञानकोषों को सक्रिय नहीं कर पाते हैं।

22. जीव, आत्मा, संस्कार और स्वभाव - II

तो फिर यह साधना के द्वारा कैसे संभव हो जाता है? साधना से हमारी चेतन ऊर्जा का प्रभाव बाहर जाना कम हो जाता है। सामान्यतः बाहरी विषयों में आसक्ति के साथ हमारी यह चेतन ऊर्जा भी निकलती रहती है। इससे शरीर का तो क्षय होता ही है, साथ ही जैव शक्ति भी खर्च होती रहती है। फलस्वरुप मस्तिष्कीय ज्ञान कोषों को ऊर्जा कम मिलती है। जब हम साधना करते हैं तब यह ऊर्जा शक्ति बाहर कम निकलती है। वह भीतर अधिक प्रभावित होने लगती है। इससे कोशिकाएं ऊर्जावान होती हैं। मस्तिष्कीय तंतुओं को ज्यादा ऊर्जा मिलती है। फलस्वरुप सुप्त पड़े हुए ज्ञान-कोष भी सक्रिय होने लगते हैं। इसके अलावा साधना में ध्यान सशक्त होता है। चेतना आज्ञा चक्र पर सिमट जाती है। इस चक्र के पीछे ही मस्तिष्क होता है। चेतना की धारा बुद्धि को क्रमशः विवेक, मेघा और प्रज्ञा की अवस्था तक पहुंचा देती है। यहां सारे ज्ञान कोष खुल जाते हैं। यही कारण है कि ऋषियों, महात्माओं व अवतार पुरुषों को त्रिकालदर्शी कहा जाता है। इसमें ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय का एकत्व हो जाता है। जानने के लिए अब कुछ भी शेष नहीं रहता है। तो प्रारब्ध के प्रभाव से जिनके ज्ञान कोष सुप्त पड़े हुए थे वे भी संकल्पित साधना से ऐसी अवस्था तक पहुंच सकते हैं ।

किसी सद्गुरु की कृपा से यह काम सरल हो जाता है। आदि गुरु शंकराचार्य ने अपने शिष्य त्रोटक पर और रामकृष्ण परमहंस ने लाटू महाराज पर ऐसी क्रिया की थी। जैसे करंट प्रवाहित करते ही मशीन के सारे पुर्जे चलने लगते हैं, वैसे ही सद्गुरु द्वारा शक्तिपात करते ही व्यक्ति के सुप्त ज्ञान कोष खुल जाते हैं। मतलब यह कि संकल्प करके गुरु अपनी चेतन धारा अभीष्ट व्यक्ति में प्रविष्ट करा देता है। श्रीकृष्ण जब महर्षि संदीपनी के पास शिक्षा प्राप्त करने गए थे तब उन्होंने भी ऐसा ही किया था। ...14 विद्याओं एवं 64 कलाओं का ज्ञान श्रीकृष्ण में प्रविष्ट करा दिया था। संकल्प शक्ति से भी लेज़र जैसी शक्तिशाली तरंगे बनती हैं एवं निर्दिष्ट लक्ष्य में प्रवेश कर जाती हैं। जैसे चाबी लगाते ही ताला खुल जाता है, ऐसे ही गुरु के शक्तिपात से शिष्य के ज्ञान कोष खुल जाते हैं। आप अपनी इच्छा शक्ति से भी ऐसा कर सकते हैं। किंतु यह कठिन काम है। इस शक्ति को मजबूत करना हर किसी के वश की बात नहीं होती है। मन की एकाग्रता के बिना यह असंभव है। एक उदाहरण - चाणक्य तब बच्चा ही था, उसकी माता उसे एक पंडित के पास ले गई और पूछा कि मेरे बेटे के भाग्य में शिक्षा है या नहीं? बच्चे की हथेली देखकर पंडित जी बोले कि इसके भाग्य में शिक्षा नहीं है। तब बालक चाणक्य ने प्रश्न किया कि शिक्षा की रेखा कहां होती है? पंडित ने बता दिया। चाणक्य उठकर रसोई घर में गया। चाकू उठाया और अपनी हथेली को चीर कर वैसी रेखा बना ली। फिर पंडित जी को दिखाते हुए बोला कि अब तो शिक्षा की रेखा बन गई ना! आश्चर्यचकित पंडित जी बोले कि यह लड़का बहुत विद्वान बनेगा। आगे चलकर ऐसा ही हुआ। इच्छा शक्ति से ज्ञान कोष खुल जाते हैं।

23. जीव, आत्मा, संस्कार और स्वभाव – III

अब एक बड़ा सवाल - क्या यह जैव चेतन संपूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है? संपूर्ण ब्रह्मांड का मतलब है - तीन-चार अरब गैलेक्सी और प्रत्येक में एक अरब तारे। फिर इनके न जाने कितने ग्रह? तो क्या इतनी जगह जीवन है? इसका ज्ञान तो किसी को भी नहीं।

अब हमारी गैलेक्सी की बात करें - यह मंदाकिनी एक लाख प्रकाश वर्ष व्यास वाली है। एक प्रकाश वर्ष में 6940 अरब किलोमीटर होते हैं। इनमें भी एक अरब तारे हैं। उनमें एक तारा हमारा सूर्य है। इस सूर्य का सौर परिवार केवल 13 अरब कि.मी. दूरी में फैला हुआ है। इसमें भी अब तक ज्ञात अन्य ग्रहों पर जैव वातावरण क्यों नहीं है? जैव और अजैव चेतन धारा का उद्गम तो एक ही है, तब यह अंतर क्यों? इसका यह अर्थ है कि

जहां कहीं जीवन योग्य पर्यावरण नहीं, वहां जीवन भी नहीं। हमारे सौरमंडल में ही पृथ्वी के अलावा अन्य आठ ग्रहों पर जीवन नहीं पाया गया है। वे या तो बहुत अधिक गर्म हैं या अत्यधिक ठंडे। इसी कारण वहां जीवन संभव नहीं है। हमारी मंदाकिनी में एक अरब तारे हैं। उनमें कहां-कहां जीवन है, हम नहीं जानते हैं। लेकिन यह अवश्य जानते हैं कि पृथ्वी के अतिरिक्त हमारे अन्य आठ ग्रहों पर जीवन नहीं है। या हो सकता है कि पहले वहां जीवन था; किंतु प्रलय के बाद सब कुछ नष्ट हो गया। यहां तक कि जैव पर्यावरण भी मिट गया।

इसका क्या मतलब? क्या जैव पर्यावरण विकसित होने के बाद ही चेतन शक्ति वहां जैव सृष्टि आरंभ करती है? तो सृष्टि के दो भाग हो गए - भौतिक एवं जैविक सृष्टि। हमारी पृथ्वी जब सूर्य से टूट कर पहली बार अलग हुई थी, तब यहां भी जीवन नहीं था। करोड़ों वर्ष पश्चात यहां जैविक वातावरण तैयार हुआ। तभी यहां जीवन की शुरुआत हो सकती थी।

24. मो कों कहाँ ढूंढे रे बंदे

यह कबीर का कथन है। कबीर की गति सर्वोपरि नाद मंडल तक थी। वे स्वयं नाद योग के फकीर थे - स्वयं के हृदय में नाद, ओम् की गुंजार, सोहम् का नाद सुनते थे। संपूर्ण ब्रह्मांड में भी यही नाद गूंज रहा है। यही हमारी श्वास में सोहम् है और चिदाकाश (चित् रूपी आकाश) में ओम् है। इसी का साकार रूप सगुण ब्रह्म् है। इसी सगुण ब्रह्म् के तीन प्रमुख रूप ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। कबीर ने यह देखा। इसकी अनुभूति की। फिर कहा कि- मो कों कहाँ ढूँढे बंदे मैं तो तेरे पास में अर्थात हृदय में।

यहां तक पहुंचने का उपाय है ध्यान योग। स्वयं के श्वास पर ध्यान टिकाना। श्वास में ही सोहम् सुनाई देगा। यही सोहम् जब सूक्ष्म हो जाएगा तब ओम सुनाई देगा। यही ओम आदि नाद है। आदि ज्योति है। यही परब्रहम है। इसी को निराकार, अनादि अनंत कहा गया है। इसी का सूक्ष्मतम बिंदु आत्मा है - जो बिंदु प्राणी में आत्मा है, वही ब्रह्मांड में ब्रह्म है। वैसे ही जैसे - जो धरती पर पहाड़ दिखता है उसके लिए वैज्ञानिक कहेगा कि यह ऊर्जा का ही स्थूल रूपांतरण है। वैज्ञानिक यह जानता है, किंतु हम नहीं जानते हैं। इसी तरह महात्मा गण जानते हैं कि ईश्वर हमारे हृदय में ही है लेकिन हम नहीं जानते हैं।

ध्यान योग का सफलतम उपाय है, अपने आप को देखते रहना। स्वंय के अंदर वाले मनुष्य पर नज़र रखना। गृहस्थी में रहते हुए लगातार ऐसा अभ्यास करते रहने से अंत तक हम अपनी आत्मा तक पहुंच सकते हैं।

कबीर ने कहा है कि खुद को हेरते-हेरते वे खुदा तक पहुंच गए। तब वह बोले - मो को कहां ढूंढे बंदे मैं तो तेरे पास में। आत्मा आपके अंदर है तो वहीं उसकी अनुभूति होगी। यह बाहर कहीं नहीं। इसका उपाय है ध्यान योग। अपनी आत्मा के अंदर में ठहरना। ध्यान प्रक्रिया को स्वयं के ही शरीर से शुरू करो। अपने शरीर को विपश्यना वाली विधि से देखते रहो - यह स्वस्थ है अथवा रोगी। फिर इंद्रियों पर ध्यान लगाओ - भोग में प्रवृत रहती हैं या योग में अथवा दोनों में। इसके बाद मन को टटोलो - राग, द्वेष, लोभ, मोह, शत्रु, मित्र भाव आदि में भी उसकी लिप्तता। अब बुद्धि पर नज़र रखो। नकारात्मक - सकारात्मक विचार, वैचारिक अस्थिरता, संशय, संदेह आदि। तत्पश्चात अहंकार, कर्ताभाव का अभिमान और भोक्ता होने की आसक्ति। इन चारों पक्षों पर ध्यान लगाने का आरंभ। करो। धीरे-धीरे जो कुछ भी गलत है, अनैतिक है, अकर्तव्य है, वासनामय है, पतनकारी है और रूहानी यात्रा में बाधक है, वह कम होने लगेगा। वह छूटता जाएगा। स्वतः ही ध्यान शरीर से इंद्रियों की तरफ मुड़ेगा। फिर यही ध्यान इंद्रियों से मन, बुद्धि, अहंकार आदि की तरफ मुड़ता हुआ रूह तक पहुंच जाएगा।
यह स्थूल से सूक्ष्म की यात्रा है। जैसे पदार्थ से कण, अणु, परमाणु तक जाने का क्रम। फिर परमाणु से इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन एवं न्यूट्रॉन तक पहुंचना। इससे भी आगे क्वार्क, लेप्टान, हिग्स बोसोन आदि मूल कण और फिर हाइड्रोजन, हीलियम आदि गैस। अंततः महा विस्फोट। यह जड़ प्रकृति में स्थूल से सूक्ष्मतम तक पहुंचना है। ऐसे ही शरीर से इंद्रियों, मन, बुद्धि, अहंकार, जीवात्मा, आत्मा और परमात्मा तक चले जाना या अनुभूति करना ध्यान योग से संभव है। ऐसी अनुभूति ही आत्मदर्शन है, रूहानी दर्शन है, परमात्मा दर्शन है। जो आपके भीतर है वही तो दिखेगा। बाहर तो प्रकृति है और आत्मा अंदर है।

इसलिए स्वयं के आत्मा का ध्यान करो। स्थूल देह से परम ज्योति स्वरूप ब्रह्म तक पहुंचो। विज्ञान तो पदार्थ से बिगबैंग; महा विस्फोट तक चला गया है। हमारे ऋषि-गण में अनेक महात्मा भी देह से अदेह तक पहुंच गए हैं। अब हमें भी यह प्रयास करना है। पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्व निभाते हुए आत्मानुभूति भी करनी है। प्रतिदिन एक घंटा ध्यान का अभ्यास - नाम के सहारे या श्वास के सहारे।

संकल्प एवं अभ्यास से सब संभव है!

25. पानी में मीन प्यासी, मोहे सुन-सुन आवे हाँसी

पानी यानी चेतन तत्व से भरा हुआ हमारा हृदय। मीन अर्थात जीवात्मा। प्यासी यानी बेचैन है। पूरी पंक्ति का अर्थ है - हमारे हृदय में ही आत्मा (चेतन तत्व, ईश्वर) है फिर भी जीवात्मा बेचैन है। वह बाहरी संसार में ब्रह्म के दर्शन करने के लिए मंदिरों व तीर्थों में भटक रही है। मनुष्य के इसी अज्ञान पर कबीर को तरस आता है; हंसी भी आती है। हजारों साल से ऋषि-मुनि, संत-महात्मा आदि मनुष्य को यह समझा रहे हैं कि आत्मा ही परमात्मा है। यह आत्मा हमारे हृदय में है। अध्यात्म में हृदय का मतलब है ललाट के मध्य में आज्ञाचक्र। यह त्रिकोण के आकार का है। इसमें दो पीली त्रिकोणात्मक रेखाएं हैं। फिर मध्य में बहुत बारीक श्वेत बिंदु है। यही आत्मा है। यही दिव्य नाद है। यही प्रकाश ब्रह्मांड में परमात्मा और प्राणी में आत्मा कहा जाता है। भौतिक जीव तत्व से जुड़ जाने के कारण यह जीवात्मा कहा जाता है। जीव भाव (अहंकार, वासना, संकल्प, विकल्प आदि) इसे दिखने नहीं देता है। गुरु की कृपा से यह जीव भाव या त्रिगुणात्मक प्रकृति का आवरण हट जाता है। तब यह आत्मा के दर्शन होते हैं - हृदय में ही आत्मा अनुभूति होती है।

मनुष्य अज्ञानवश इस बात को भूल जाता है। वह मंदिरों में पत्थर एवं धातु से बनी मूर्तियों में भगवान के दर्शन करने के लिए भटकता रहता है। इसी तरह वह बाहरी तीर्थ स्थल या गंगा-जमुना-सरस्वती का संगम तो हमारे हृदय में ही है। इडा नाड़ी यानी गंगा, पिंगला यानी यमुना और सुषुम्ना नाड़ी यानी सरस्वती का संगम आज्ञाचक्र में ही है। यहीं ध्यान लगाने एवं यहीं स्थिर हो जाने को तीर्थ स्थान कहा गया है। इसके प्रभाव से मन के मैल कट जाते हैं। बुद्धि स्थिर हो जाती है। कर्तापन का अभिमान एवं भोक्ता भाव की आसक्ति हट जाती है। यह सारा काम सतगुरु की कृपा से संभव है, सरल है।

भारत में 30 लाख मंदिर और 50 लाख दरगाह आदि हैं। अनेक नदियों पर तीर्थ बने हुए हैं। फिर भी अज्ञान, अपराध, मनोविकार, राग, द्वेष बढ़ते जा रहे हैं। इसका सीधा सा मतलब यही है कि बाहरी तीर्थ एवं मंदिर भी बेअसर है। अंदर की आत्मा दर्शन, अंदर के तीर्थ में स्नान और अंदर का सुमिरन ही फलदाई होता है।

26. इबादत में तहज़ीब नहीं, जागरुकता जरूरी है

तमीज़ और तहज़ीब का संबंध शरीर से है। इसका ताल्लुक कर्मकांड से है। सिर ढकना, साफ वस्त्र पहनना, जूते-चप्पल उतार कर अंदर आना, फूल, माला, अगरबत्ती पेश करना आदि बाहरी धार्मिक क्रियाएं हैं। यह इबादत नहीं है। इबादत तो मन का अभ्यास है। इबादत तो मन को आत्मा से जोड़ने का तरीका है। इबादत तो निराकार अहंकार को रूह में फना कर देने का संकल्प है. इबादत खुद को मिटा देने वाली दिलेरी है। तमीज़ और तहज़ीब की इस मन तक तो पहुंच ही नहीं है। वहां तो करोड़ों न्यूरॉन्स हैं। करोड़ों स्पंदन हैं। वहां तो अदृश्य विचार है, अदृश्य भाव है। वहां पूर्व जन्मों के निराकार संस्कार संचित हैं। वहां तहज़ीब क्या करेगी; वहां तमीज़ क्या करेगी।

इबादत तो मन की जागरूकता है। अधर्म, अनीति, अपकर्म नहीं करने का संकल्प है। इबादत तो तकरार, तिरस्कार, प्रताड़ना, प्रपंच आदि से बचे रहने की सचेतनता है। यह अंदर का संयम है। अंतःकरण का रूहानी नियमन है। यह तो वस्तुवादी स्वाद, भोग आदि के यौगिक रूपांतरण की आंतरिक प्रक्रिया है। यह धूप, दीप, अगरबत्ती से संभव नहीं है।

इबादत तो मानस भक्ति है। जाप मन में, नाम मन में, ध्यान मन में, अनुभूति मन में! बुद्धि, अहंकार और जीवात्मा भी अंदर। भोग की वासना और योग का संकल्प भी अंदर। बाहर तो केवल दुनिया है।

अंदर के चिदाकाश को खोलने वाली साधना की निरंतरता ही इबादत है। अपनी ही सांस में सोहम् सुनने का तरीका है इबादत। यह जूते-चप्पल, रोटी, रुमाल वाली तमीज़ से नहीं सधेगा। इसलिए इबादत संपूर्ण मन की विभूति है। यह मन को पदार्थ से परमाणु तक ले जाने वाली प्रक्रिया है। यह मनुष्य को शुक्राणु से ब्रह्माणु तक पहुंचा देने वाली रूहानी प्रयोगात्मकता है। इसी का दूसरा नाम है - खुदा से इश्क करना।

27. गुरु का आसन तो आज्ञा चक्र पर होता है

गुरु के शरीर का आसन किसी आश्रम में होता है। वह वहीं रहता है। हम वहीं गुरु का निवास मान लेते हैं। यही हमारी भूल है। गुरु का यानी रूहानी गुरु का आसन

मनुष्य के आज्ञाचक्र पर होता है। यहीं गुरु तत्व है। आज्ञाचक्र पर ही ज्ञान है। वहीं आध्यात्मिक प्रयागराज है। वहीं रूहानी त्रिवेणी का स्नान है। यहीं स्थिर हो जाने के परिणामस्वरुप मनुष्य में अतींद्रिय शक्तियों का अवतरण होता है। जो मनुष्य इस दिव्य स्थान पर टिक गया वही तर गया।

गुरु का आसन आज्ञाचक्र पर है। वह अपने शिष्य को सीधा यहीं पर उठाता है। यहीं बिठाता है। यहीं से उसकी साधना आरंभ कराता है। मुझे अपने सूफी गुरु हज़रत हरप्रसाद मिश्रा जी उवैसी का ऐसा ही अनुभव है। नीचे वाले पांचो चक्र स्वतः ही पार कराते हुए वे अपने मुरीद को इसी आज्ञाचक्र पर ले जाते थे। फिर कह देते कि अपने अभ्यास से स्वयं यहां ठहरना सीखो। यहां से आगे की यात्रा स्वयं करो। हम तुम्हारे साथ हैं। उन्होंने कहा कि आगे के लिए गुरु तुम्हारा रहबर है। यहीं रूहानी गुरु आज्ञाचक्र पर पीठासीन है। यहीं उसकी रूहानी गद्दी होती है। यहीं से ब्रह्म का द्वार खुलता है। इसीलिए गुरु ही शिव है, गुरु ही ब्रह्म है, गुरु ही तीर्थ है; वह मुक्ति का द्वार है। अपने शिष्य को ऐसा रूहानी गुरु इसी जगह से आत्मानुभूति तक पहुंचाता है। गुरु की देखरेख में शिष्य यहीं से आगे वाली रूहानी यात्रा करते हुए स्वयं के ही आत्मा तक चला जाता है। इसी आत्मा का परम यानी अनंत विस्तार वाला रूप ब्रह्म है।

आज्ञाचक्र पर सूक्ष्म वाइब्रेशन (कंपन) है। अद्भुत खुमारी है। भूख-प्यास नहीं है अर्थात जितनी देर साधक यहां स्थिर रहता है उतनी देर तक भूख-प्यास नहीं है; संसार की तरफ प्रवृत्ति नहीं है। उस वक्त वह केवल अपने रूहानी गुरु से जुड़ा हुआ रहता है। उतनी देर वह गुरु की कृपा से आगे बढ़ता रहता है। इस आज्ञाचक्र पर प्रकाश है, धड़कन है। बंद स्थूल आंखों के उपरांत भी देखने की शक्ति है। सामने वाले के मन को पढ़ लेने का सामर्थ्य है। यहां से वह अनंत में झांकने लगता है। यहां उसमें अज्ञात ज्ञान उतरने लगता है। अनेक अज्ञात प्रश्नों के उत्तर स्वयं के हृदय में ही मिलने लगते हैं।

यहां तक पहुंचने का साधन गुरु की कृपा है। निरंतर ध्यान का अभ्यास है। श्वास पर एकनिष्ठ ध्यान ही लगातार साधना है। आंतरिक मौन है। नियमित आंतरिक कीर्तन है।

28. अपना दीपक खुद जलाओ

ज्ञात इतिहास में हो चुके हजारों समर्थ साधु-संत यदि दूसरों के हृदय से अज्ञान मिटा देते तो आज का समाज सकारात्मक (पॉजिटिव) होता। लाखों मनुष्य सुधर जाते। किंतु ऐसा नहीं हुआ। संत-महात्माओं ने समाज के हृदय के अज्ञान को दूर नहीं किया। केवल उपदेश किया, केवल रास्ता बताया; चलाया नहीं, इसलिए अपना दीपक खुद जलाओ। खुद को देखो, खुद को सुनो, और खुद में सुधार करते रहो।

जो मनुष्य नकारात्मक कर्म द्वारा खुद अपनी ही अधोगति करता है वह खुद का ही शत्रु है। जो लोग अपनी उच्च गति वाले कर्म करते हैं वह अपने आप के मित्र हैं। जो कोई भी स्वयं को पुनर्जन्म से भी छुटकारा दिलाने वाले कार्य करते हैं वह खुद ही अपने गुरु हैं। और जो मनुष्य (भक्ति, ज्ञान, कर्म, योग, जप, तप आदि द्वारा) स्वयं के जीवात्मा को उसके परमात्मा वाला स्वरूप दिखा देता है, वह खुद ही खुद का ईश्वर है। इसी बात को समझाने के लिए कहा गया है कि अपना दीपक खुद बनो।
अपने हृदय के अज्ञान को मिटाने के लिए प्रयत्न करो। अपनी ऊर्ध्व गति के प्रति खुद ही जागरूक रहो। अपनी जीवात्मा को अधोगति से बचाने के लिए स्वयं ही सचेत रहो, सचेतन रहो।

ऐसे प्रयत्न के लिए आरंभ इस प्रश्न से करो कि मैं कौन हूं? खुद के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानना ही अज्ञान है। यही अज्ञान अन्य सारे उत्पातों की जड़ है। जब तक हम खुद को भोगवादी देह समझते रहेंगे तब तक अधोगामी कर्म होते रहेंगे। दूसरी तरफ ज्यों ही हम स्वयं को ब्रह्म का सूक्ष्म अहं (आत्मा) स्वीकार कर लेंगे त्यों ही हमारे कर्म ऊर्ध्वगामी होते रहेंगे। इस कार्य के लिए गुरु सचेतन होता है। वह चेताता है, जगाता है। समझाता है, प्रेरित करता है। तत्पश्चात कर्म तो मनुष्य को ही करना पड़ता है। उसका संकल्प, उसकी लगन, उसकी सचेतनता और जागरूकता ही उसके आंतरिक अज्ञान को दूर करेगी। उसका बौद्धिक निश्चय, मानसिक दृढ़ता एवं सकारात्मक निंरतरता ही उसे ऊर्ध्व गति देगी। तुम्हें कोई भी उठाकर एवरेस्ट पर नहीं ले जाएगा और ना ही ले जा सकता है। खुद ही चढ़ाई करनी होगी। फिसलने से बचना होगा। ठंड सहन करनी होगी। वहां के हिमपात वाले वातावरण के साथ अनुकूलन करना होगा। यही बात रूहानियत में भी सख्ती से लागू होती है।

29. पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार

कबीर का तात्पर्य यह है कि पत्थर की पूजा मत करो, उसमें भगवान देख लेने वाली दृष्टि विकसित करो। इस दोहे में धार्मिक आडंबर पर चोट है। यहां मूर्ति पूजा का विरोध नहीं है। कबीर के गुरु स्वामी रामानंद जी तो खुद श्री राम की पूजा करते थे। यहां उस अज्ञान पर चोट है जो बाहर पत्थरों में भटक रहा है।

कबीर यह कहते हैं कि तुम अपने हृदय में तो अभी भी शरीर ही बने हुए हो। तुम्हारी आसक्ति तो इस भोगवादी नश्वर शरीर में ही है। तुम अभी तक समझे ही नहीं कि ईश्वर तो हृदय में ही है। आत्मा तो तुम्हारे हृदय में ही है। तुम पहले खुद के अंदर वाले भगवान को देखो। अंतस्थ ब्रह्मनाद को सुनो। ऐसी नज़र विकसित करो जो पूरे ब्रह्मांड में एक ही ब्रह्म की ज्योति को देखे। तुम अपने अहम् का इतना विस्तार कर लो कि प्रत्येक जीव-अजीव में तुम्हें वही (अपना अहम्, अपनी आत्मा) दिखे। तुम पहले यह अनुभूति करो कि 'सब प्राणी मेरे ही अंदर हैं और सब जीवों में भी मैं (अहम्) ही हूं'। इसके बाद पत्थर में, पहाड़ में, वनस्पति में, नदियों के पानी में, फूलों आदि में वही परम चेतना दिखेगी। तब तुम्हें पत्थर को या मूर्ति को पूजने की जरूरत नहीं रहेगी। तुम्हें तो वहां भगवान दिख ही रहा है। तुम्हें तो चारों तरफ ब्रह्म् ही ब्रह्म् दिख रहा है। तब पूजा किस की।

स्वामी रामदास जी एक ऐसे ही भक्त थे। किसी मंदिर में वे शिवलिंग पर पैर रखकर सो रहे थे। एक नास्तिक ने यह देखा। वह भी घबरा गया। झिंझोड़ कर उन्हें उठाया और बोला आप यह कैसा पाप कर रहे हैं। भगवान पर पांव रखकर सो रहे हैं। रामदास जी बोले कि तुम मेरे पैर को उधर कर दो, जिधर भगवान नहीं है। अब तो वह नास्तिक चकरा गया - जिधर भी साधु के पैर मोड़ता उधर ही शिवलिंग दिखता।

ऐसा ही कबीर के बेटे कमाल के साथ हुआ। एक दिन कबीर बोले कि जंगल से लकड़ी काट कर ले आओ। कमाल खाली हाथ लौट आया। वह बोला, बाबा! जिस किसी डाली को काटने के लिए कुल्हाड़ी उठाता था, वही शाखा हिलने लगती और कहती कि मुझे मत काटो। कबीर अचंभित रह गए। उन्हें कभी ऐसा नहीं दिखा। उन्होंने बेटे को गले से लगाते हुए कहा - तुम तो बैठे-बैठे ही ब्रह्म् ज्ञानी हो गए।

इतनी व्यापक दृष्टि वाले महात्मा कबीर ने कहा कि पत्थर की पूजा मत करो। उसमें भगवान को देख लेने वाली दृष्टि विकसित करो।

30. गुरु शिष्य के बीच मानस संबंध होता है

गुरु और शिष्य के बीच शरीर कहीं नहीं है। वहां तो मन से मन का जुड़ाव रहता है। गुरु का सुमिरन हृदय में और शिष्य पर कृपा भी हृदय में। आपसी संवाद भी मनोगत। भाव मनोगत। बोध भी मनोगत। रूहानी ज्ञान बोलकर नहीं कराया जाता है, मुंह से बोले हुए शब्दों से आध्यात्मिक ज्ञान नहीं झरता है। गुरु अपने संकल्प से शिष्य को हृदय में यथा योग्य बोध करा देता है। संदीपनी ऋषि ने श्रीकृष्ण के हृदय में इसी प्रक्रिया से सारा ज्ञान उतार दिया था। घोर अंगिरस मुनि ने भी कृष्ण को ब्रह्म ज्ञान हृदय से हृदय वाली विधि द्वारा कराया था। मुझे भी मेरे गुरुदेव हज़रत हरप्रसाद उवैसी जी ने एक बार टोका - कब तक मुंह से बोलते रहोगे। अब खुद के मन में हमारे मन से बात किया करो, यानी मनो संवाद। फिर वर्षों तक यही चलता रहा। मैं देवली में बैठे हुए मन में प्रश्न करता और मन में ही गुरु का जवाब सुनता। ऐसा क्रम आज तक जारी है।

श्री कृष्ण प्रतिदिन ब्रह्म मुहूर्त में किसी को प्रणाम करते थे। सबसे पहले यही कार्य करते थे। रुक्मणी सदैव ऐसा देखती थी। एक दिन उसने प्रभु के चरणों में बैठे हुए उस रहस्य को जानना चाहा। कृष्ण ने बताया कि वे उनके ब्रह्म गुरु घोर अंगिरस जी को मानस प्रणाम करते हैं। रुक्मणी बोली कि इतनी दूर तक (द्वारका से काशी) मानस प्रणाम पहुंच जाता है? वासुदेव हंस दिए! फिर कहा- जहां तक मन की गति है वहां तक मनो संवाद एवं अभिवादन संभव है। गुरु-शिष्य के बीच में सारा कार्य मनोगत ही होता है - भक्ति मन में, सुमिरन मन में, स्मृति मन में, कृपा मन में, बोध मन में, संकल्प मन में और गुरु के दर्शन भी मन में। मन यानी अति चेतन मन।

साधना के सहारे यहां तक पहुंचना संभव है।

31. इबादत करना तुम्हारी जरुरत है या मकसद

किसी भी सांसारिक आवश्यकता की पूर्णता के लिए की जाने वाली इबादत रूहानी नहीं होती है, वह धन-संपत्ति, औलाद, नौकरी, व्यापार आदि उपलब्ध कराने के साथ पूरी हो जाती है। उसके फल का आगामी जन्म के लिए संचय नहीं होता है।

यदि इबादत आत्मानुभूति के लिए की जाती है, उसे रूहानी इबादत कहते हैं। ऐसी भक्ति या साधना का फल अगले जन्मों के लिए संचित होता रहता है। प्रत्येक जन्म की ऐसी साधना पुनर्जन्मों में क्रमशः उच्च से उच्चतर गति दिलाती रहती है। अंतत: अनेक जन्मों में की गई ऐसी संपूर्ण साधना का संपूर्ण फल किसी भी जीव योनि में जन्म से मुक्त कर देता है।

इस कथन को पुष्ट करने के लिए सूफी फकीर सरमद के जीवन से संबंधित एक घटना यहां प्रस्तुत है। सरमद के गुरु भीखा साहब या हरे भरे शाह थे। एक बार वह अपने गुरु के घर पहुंचा। बाहर सेवादार ने कहा कि ठहरो। उसने गुरुजी को सूचना दी। अंदर से बाहर आवाज आई - क्या चाहते हो? सरमद ने जवाब दिया कि कुछ नहीं। दूसरा सवाल - यहां क्यों आए हो? मुरीद का उत्तर - पता नहीं। तीसरा प्रश्न - तुम्हारे साथ कौन है? गुरु के ख्याल में फना रहने वाले सरमद ने कहा - कोई नहीं, चौथा प्रश्न - तू खुद भी नहीं? खुद को मिटे तो बहुत वक्त हो गया; अब तो केवल आप हुजूर ही हैं। तब आवाज आई - अच्छी बात है; अंदर आ जाओ। फिर सरमद फनाफिल शेख (गुरु की रूह में लीन) हो गया।

परिणाम - जब औरंगजेब के आदेश से सरमद का सिर काटा गया तब उसका सूक्ष्म शरीर उसी आकार में सामने खड़ा हो गया। उसने कटा हुआ सिर हाथ में उठा लिया और जामा मस्जिद की सीढ़ियां चढ़ने लगा। उस वक्त भीखा साहब की आवाज गूंजी - रुक जाओ सरमद! मस्जिद में गए तो दिल्ली तबाह हो जाएगी। और फिर सरमद का सूक्ष्म शरीर भी गुरु के पास चला गया। वहीं एकरूपेण हो गया।

32. गुरु संग पीवत चढ़ी खुमारी

कबीर और उनका एक साधक बैठे हुए थे। दोनों के खुमारी चढ़ी हुई थी। दोनों ही बेखुदी में थे। कोई चेत नहीं। कुछ होश नहीं, दोनों मस्ती में। दोनों चुप। कौन बोले! मस्ती में बेसुधी ऐसी कि बोला ही नहीं जाए। ना भूख ना प्यास! आनंद ही आनंद!

कबीर की सुरत यानी रूह आज्ञाचक्र पर सिमटी हुई थी। वह नाम की खुमारी में मस्त थे। समाधि लगी हुई थी। उसी वक्त एक अच्छा साधक वहां पहुंच गया। कबीर का ही चेला था। वह गुरु जी के पास जाकर बैठ गया। सुमिरन करने लगा। वह कबीर के रूहानी ओरा (आभा) में बैठा हुआ था इसलिए उस पर भी मस्ती चढ़ने लगी। नाम के जोर से, गुरु की संगत के खिंचाव से रूह आज्ञाचक्र पर चढ़ गई। अब दोनों ही मस्त थे। 'गगन गुफा से अमृत' टपक रहा था - सहस्रार चक्र से चेतना का झरना झर रहा था। आज्ञाचक्र से मूलाधार तक चेतना का आनंद झर रहा था। नाद ज्योति का आनंद हिलोरें ले रहा था।

गुरु के पास बैठने का यही मजा है। गुरु की शरण में ऐसा दुर्लभ आनंद है। जब गुरु की अदृश्य रूहानी चेतना अंदर-बाहर हो रही है, आर-पार हो रही है, तब तुम पहुंच गए तो हो गया कल्याण! तुम मानो त्रिवेणी में नहा लिए। तुम चिदाकाश में फैल गए। अब तुम देह नहीं जीवात्मा हो। अब तुम तो चुप हो; किंतु तुम्हारी जीवात्मा जाप कर रही है। तुम तो बेखुदी में हो, जीवात्मा में अजपा जाप के कंपन हो रहे हैं; प्रति सेकंड 10 लाख से भी अधिक। ब्रह्म ज्योति के रूहानी फोटोन (कण) बाहर निकल कर दिव्य ओरा (आभा) बना रहे हैं। तुम उस ओरा के कवच में अलमस्त हो। गुरु संग पीवत चढ़ी खुमारी - ऐसी कृपा सबको मिले!

33. मंत्र में अभिसिक्त पानी का विज्ञान

मंत्र की शक्ति जब पानी में उतार दी जाती है तो उसे अभिसिक्त जल कहते हैं। ऐसे जल से अनेक बाधाएं दूर हो जाती हैं। इसका पूरा विज्ञान है। यह एक तरह की वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसे तंत्र-मंत्र के साथ जोड़ दिया गया है।

विज्ञान ने साबित कर दिया है कि पानी में याददाश्त होती है। इसलिए बोले गए मंत्र की शक्ति उस पानी में उतर जाती है। उक्त ऊर्जा जल में सुरक्षित रहती है। ऐसा जल पी लेने से उक्त शक्ति शरीर में जाकर एंटीबायोटिक जैसा काम करती है। उस पानी को याद रहता है कि शरीर के अंदर पहुंचकर उसे क्या करना है। अलग-अलग मंत्रों में अलग-अलग बाधाओं के निवारण की ताकत होती है। यह ताकत इन मंत्रो के अक्षरों में संकल्प द्वारा उतारी जाती है। ऐसा कार्य हमारे ऋषि-मुनियों ने हजारों साल पहले ही कर दिया था। पीढ़ी दर पीढ़ी यह मंत्र हमें मिलते रहते हैं। इन्हें उच्चारण एवं आवृत्ति की निर्दिष्ट संख्या से सिद्ध किया जाता है यानी सीखा जाता है। फिर मनोबल के सहारे बर्तन के पानी में मंत्र द्वारा ऐसी शक्ति उतारी जाती है।

ऐसा किस कारण होता है? वस्तुतः पानी में हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन के परमाणु होते हैं। ऑक्सीजन के परमाणुओं में ऋण विद्युत आवेश और हाइड्रोजन में धन आवेश होता है। इसके परिणाम स्वरुप पानी में ऊर्जा की धारा बनती रहती है। इसी में स्मृति की शक्ति होती है। यही स्मृति मंत्र के अक्षरों को याद कर लेती है। इन अक्षरों के कंपन पानी में सेव (संरक्षित) हो जाते हैं। ऐसा पानी शरीर में एंटीबॉडी जैसा काम करता है। यह प्रभाव स्नायु तंत्र तक पहुंच कर भी कार्य करता है। अज्ञानवश हम इसे साधु-संत या तांत्रिक का चमत्कार मानकर उसे पूजने लगते हैं।

34. क्या होती है मुक्ति

किसी भी योनि वाली देह में जन्म नहीं लेना पड़े यही है मुक्ति। भौतिक शरीर से मुक्ति। फिर भी चार शरीर रह जाते हैं। भौतिक देह से छूट गए तो सूक्ष्म शरीर में विचरण करते रहो। सूक्ष्म जगत हमारे भौतिक ब्रह्मांड से तीन गुना बड़ा है। इसमें सबसे ऊपर है निर्वाण शरीर (महाशून्य) लोक।

तो सूक्ष्म शरीर से छुटकारा पाने के लिए दसों सूक्ष्म इंद्रियों के अस्तित्व से पीछा छुड़ाना पड़ता है। जिन जीवात्माओं का पुनर्जन्म होता रहता है, उनके लिए कोई समस्या नहीं है। बात उन जीवात्माओं की है जो मुक्ति की राह पर आगे बढ़ी हैं। उन्हें दसों सूक्ष्म इंद्रियों से पीछा छुड़ाना होता है। भौतिक दृष्टि से यह सब हमारे मस्तिष्क में होती हैं। इनमें लाखों करोड़ों न्यूरॉन्स होते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से यह सूक्ष्म देह में होती हैं और वस्तुओं से

उड़ते हुए सूक्ष्मतम अणुओं का भोग ग्रहण करती हैं (यह एक पूरा विषय है इसे आगे फिर कभी अवश्य स्पष्ट करेंगे)। जप-तप एवं गुरु कृपा के परिणाम स्वरुप यह संभव है। यह सूक्ष्म शरीर भुवलोक में रहते हैं जो कि धरती से ऊपर आयन मंडल के आसपास बताया जाता है। कुछ सूक्ष्म जीव पृथ्वी पर ही सिद्धपुर, सिद्धाश्रम जैसी अपार्थिव जगहों पर रहते हैं। वहां उन पर ज्योति पुरुषों की नज़र रहती है।

सूक्ष्म देह छूट जाने के बाद कारण शरीर रहता है। इसमें इंद्रियां नहीं रहती किंतु शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध के चिदाणु (चित् रूपी अणु, प्रकाश बिंदु, ज्योति कण) रहते हैं। इसमें सात्विक जीव भाव के माइक्रोडॉटस (सूक्ष्मतम निशान) रहते हैं। उर्धव सूक्ष्म लोकों में इनकी गति रहती है। इनका रूहानी संबंध प्रगतिगामी साधुओं-साधकों से रहता है। इनका स्थाई ठिकाना अपार्थिव ज्योति केंद्र होते हैं। विश्व में ऐसे अनेक स्थान हैं। सर्वाधिक हिमालय क्षेत्र में बताए जाते हैं। हम भारतीय पुराणों में जिन मह:, जन:, तप: आदि लोकों के बारे में पढ़ते हैं। वे सब अंदरूनी हिमालय के अगम्य क्षेत्रों में बताये जाते हैं। चाहे जब साकार-निराकार होते रहना इनकी रूहानियत शक्ति है। अजमेर के ही दो साधकों (सूफ़ी नहीं) को इन क्षेत्रों में गुरु नानक देव, योगानन्द जी ठाकुर आदि के दर्शन हुए हैं।

35. मुक्ति की पांचवी अवस्था; सर्वात्म

इस अवस्था में व्यक्तिगत (इंडिविजुअल) आत्मा नहीं होती है। जीवात्मा नहीं है। परमात्मा है, सर्वात्मा है। ब्रह्म् है (सगुण व निर्गुण का एकत्व अति सूक्ष्म), यही पूर्णता है। देहधारी जीव कभी भी पूर्ण नहीं होता है। देह अपूर्ण है।

मानव मुक्ति की यह अवस्था ऐसी है - आकाश सब जगह है फिर भी अविभाजित है। हवा धरती से 1000 किमी ऊपर तक है। उसके भी टुकड़े नहीं हैं। प्रकाश सर्वत्र है; अरबों-खरबों तारों का प्रकाश ब्रह्मांड में सब तरफ है। इसका भी विभाजन असंभव है। इसी तरह सर्वात्म चेतना भी सर्वव्यापी है किंतु वह अविभाजित है। मुक्त मनुष्य (जो ब्रह्म् में तदाकार है) का अस्तित्व भी ऐसा ही होता है।

आकाश, हवा, पानी, अग्नि आदि सब प्राणियों के अंदर है और बाहर भी है। कबीर साहब वही हो गए थे - तू ही तू, मैं भी हो गई लाल, अब मैं नाहीं। गुरुदेव उसी तरफ जा रहे हैं। फिर भी, यह सब अकाल नहीं है। आकाश में ही है। आकाश से बाहर अवकाश है। काल से ऊपर अकाल पुरुष है - इस ओंकार सतनाम! अवकाश में ब्रह्मांड भी नहीं है। यह मुक्ति से भी परे ओंकार है।

36. मुक्ति; चौथी अवस्था

स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर छूट जाने के बाद महाकारण देह रहती है। यह जीवात्मा है। मैं (जीव) आत्मा (प्राण) हूं। यह भाव भी बंधन है। यहां केवल बिंदु है। ज्योति बिंदु! इस बिंदु में अहम् यानी शुद्ध 'मैं' है। इसमें प्रकृति के जड़ तत्व नहीं हैं। सूक्ष्मतम 'मैं' केवल ब्रह्म् का स्थूल रूप होता है। यह सचेतनता सूक्ष्म प्राण तत्व से जीवित रहती है। इस अस्तित्व में महात्मा भी सर्वव्याप्त रहता है। इस अवस्था में कोई रिश्ता नहीं, कोई संबंध नहीं, कोई गुरु नहीं, कोई शिष्य नहीं। बस प्राण तत्व का सूक्ष्म स्पंदन है। क्वार्क दिखता नहीं है - अकेला नहीं दिखता। दो या तीन मिल जाते हैं तब प्रोटॉन आदि कण के तौर पर दिखता है। ऐसे ही चौथी अवस्था वाला यह बिंदु भी लगभग अदृश्य रहता है - कारण शरीर में आने के बाद ही दिखता है। महारास की चरम अवस्था में गोपियों के सात घेरे सात ज्योतिर्मय लकीरों जैसे दिखते हैं और बीच में राधा कृष्ण का भी अद्वैत रूप 'बिंदु' दिखता है। यही शिव-शक्ति, प्रकृति-पुरुष, जीव-ब्रह्म् के एकत्व वाली अवस्था है ।

मंदिर, दरगाह आदि के गुंबद का अंतिम या सबसे ऊपर वाला कलश भी यही समझाता है। उस अंतिम कलश में जो अति सूक्ष्म छेद होता है, वहीं ब्रह्म द्वार होता है। राम द्वार है, ब्रह्मरन्ध्र प्रतीक है।

37. गुरु चाहे तो एक बार में ही पार लगा दे

बुल्ले शाह तब कच्ची उम्र का लड़का बुल्ला था। एक दिन बुल्ला की हथेली अपने हाथ में लेकर उसके पीर ने पूछा - बोल, इस पर क्या लिख दूं? बुला ने कहा - तू मेरा रब है। तू खुद का नाम मेरी हथेली पर लिख दे।

फिर उसके गुरु इनायत शाह ने उस 'बुल्ला' को नामी सूफी संत बुल्लेशाह बना दिया। उसे सातवें आसमान जितना ऊपर उठा दिया। रब से मिला दिया। इस पार से उस पार लगा दिया। तब बुल्लेशाह बोले - तुझ में वह, मुझ में वह, तू रब कह, तू रब है अर्थात 'तत्व मसि; तत त्वम् असि; वह ब्रह्म तू खुद ही है।

38. गुरु कृपा के तीन रूप

1) घर-व्यापार में बरकत। काम-धंधा चलता रहे। शादी-ब्याह होते रहें। क्लेश आदि मिटते रहें।

2) गुरु का एहसास कराने वाली खुशबू आती है। जहां-तहां गुरु के रूप दिखते रहते हैं। भावी घटना का एहसास करा देते हैं। ध्यान की अवस्था के दौरान अनेक तरह के नज़ारे दिख जाते हैं। ये सब अनुभूतियां कही जाती हैं। ऐसी अनुभूतियां घटित होकर मिट जाती हैं - स्थाई नहीं रहतीं। होती रहती हैं, मिटती रहती हैं।

3) इस कृपा को दर्शन या ज्ञान कहते हैं। गुरु के अनुग्रह से रूहानी शक्ति साधक के अंदर उतरने लगती है। साधक को समर्थ बनाती है। दूर का दिखाई व सुनाई देने लगता है। दूसरों के मन की बात ज्ञात होने लगती है। सूक्ष्म शरीर को बाहर निकालने की ताकत मिल जाती है। आकाश में विचरण करने वाली अन्य शक्तियों से अनायास ही संपर्क होने लगता है। ऐसा सामर्थ्य चार प्रकार का होता है। तांत्रिक - अला-बला को मिटा देना। मांत्रिक - देवी-देवताओं का आह्वान कर लेना। सिद्धियां - चमत्कार वाले कार्य कर देना। सूर्य विज्ञान - प्रकृति में हेर-फेर कर देना। किंतु ऐसे सामर्थ्य का अनावश्यक अथवा दुरुपयोग करते ही बात बिगड़ जाती है। साधक की इन शक्तियों पर भी गुरु का नियंत्रण रहता है।

39. इबादत पूरी तरह आंतरिक प्रयास है

जो मन भक्ति में लगता है, वह सूक्ष्म है। वह अंतःकरण में होता है। अंतःकरण हृदय में होता है। हृदय आज्ञाचक्र में है। यह आज्ञाचक्र एक बिंदु में होता है। यह मन अंदर वाली हजारों अदृश्य नाड़ियों से सम्बद्ध रहता है। इन नाड़ियों में तीन प्रमुख होती

हैं। इन तीनों का मेल जब आज्ञाचक्र पर होता है तब साधना की उच्च अवस्था प्राप्त होती है। हमारा अन्तःकरण ही जीवात्मा में संलग्न रहता है। पुनर्जन्म के लिए यही अंत:करण जीवात्मा के साथ जाता है। जब कभी जीवात्मा और अंतःकरण का संबंध टूट जाता है, तब उसे ही जीवन मुक्ति कहते हैं।

इस मन में कर्माणु होते हैं। पूर्व जन्मों में किए हुए कार्यों के संचित भोग संस्कारों को ही कर्माणु कहते हैं। प्रत्येक जन्म में संचित होने वाले कर्माणु मन पर ही अंकित होते हैं। इनसे संस्कार बनते हैं। संस्कार के अनुसार ही अगला जन्म एवं स्वभाव निश्चित होता है। इसीलिए मन को भक्ति में लगाने की बात कही जाती है। भक्ति के जोर से उसके कर्माणु कटते हैं और यह मन निरंतर शुद्ध होता रहता है। जिस तरह मंदिर में झालर की तेज आवाज़ की तरंगों से वहां के सूक्ष्म जीवाणु मर जाते हैं, वायुयान उड़ते ही तेज आवाज़ की तरंगों से आसपास वाले मकान की खिड़कियों के कांच टूट जाते हैं, उसी प्रकार भजन, ध्यान, सुमिरन आदि से उत्पन्न तरंगे मन में जमे हुए कर्माणुओं को मार देती है। गीता में भगवान कहते हैं कि भक्ति के तेज में पाप भस्म हो जाते हैं। ज्यों ही सारे कर्माणु साफ हो जाते हैं, मन अति चेतन अवस्था में पहुंच जाता है। यही मुक्तावस्था है।

-217 डिग्री ताप पर परमाणु स्थिर हो जाते हैं - उनकी गतिशीलता ठहर जाती है। ऐसे ही कर्माणुओं की समाप्ति पर आंतरिक संकल्प-विकल्प मिट जाने से मन में कंपन होना रुक जाता है। मन स्थिर हो जाता है। तत्काल ही वह अति चेतन को प्राप्त होता है।

तो भक्ति इसी रूहानी मन से होती है। इस पर अंकित कर्माणु यदि अनुकूल हैं, तो इबादत में मन लग जाता है। रूहानी उन्नति हो जाती है। यदि कर्माणु प्रतिकूल हैं तो मन उपासना में नहीं लगता है। बड़ी मुश्किल होती है। तब गुरु ही मदद करता है। खुद को संकल्प करना होता है, कसक बढ़ानी होती है। यह रूहानी मन ही जन्म-जन्मान्तरों का कारण बनता है। यह हमारी चेतना के साथ-साथ फैलता-सिमटता है। हमारी सांस के साथ गतिशील रहता है। इसे योग साधना से नियंत्रित किया जाता है। नाम सुमिरन भी ऐसा ही सशक्त साधन है।

40. साधना के दौरान जब बिंदु दिखता है

इस पूरे ब्रह्मांड में जड़-चेतन का मूल बिंदु ही है। ब्रह्मांड का मूल ब्रह्माणु, मनुष्य का शुक्राणु, पदार्थ का परमाणु। चेतन ऊर्जा का मूल चिदाणु यानी चेतन अणु। इसलिए साधना के आरंभ में बिंदु का दिखना स्वाभाविक है। बिंदु दिखा तो समझ लो गुरु ने हाथ पकड़ लिया। वह तुम्हारी उंगली पकड़ कर तुम्हें चलाने लगा है।

यह बिंदु आरम्भ में अणु जितना होता है। स्वयं की आंतरिक अवस्था के अनुसार इसके रंग अलग-अलग होते हैं। नीला, लाल, पीला, श्वेत आदि। सबसे अच्छा श्वेत माना जाता है। यह किसी को त्रिकोण में दिखता है। किसी को चक्र में व अन्य किसी को शून्य में दिखता है। अब इसी बिंदु पर टिक जाओ। धीरे-धीरे यह बड़ा होगा। इसे देखते रहो। अणु से कण, कण से राई के दाने जितना, आगे सरसों के दाने जैसा। फिर ज्वार के दाने जितना हो जाता है। इससे ज्योति फूटती है। नाम स्वतः चलने लगता है। तुम इसी को देखते रहो। साँस धीमी हो जाती है; अपने आप चलती है। तुम सुमिरन में ही खो जाओ।

तब केवल बिंदु है। केवल ज्योति है। केवल सुमिरन है। तुम नहीं हो। इससे आगे नाम का ही नाद है। अब तुम अपने द्वारा जपे जाने वाले नाम का नाद सुन रहे हो। यहां कोई सुध-बुध नहीं। केवल नाद ज्योति है। गुरु की कृपा से यह अवस्था 6 माह में ही आ जाए या फिर 6 साल भी लग जाएं अथवा आए ही नहीं। यह गुरु कृपा या आपके संकल्प का परिणाम है।

आगे चलकर इसी बिंदु में आकाश दिखता है। किंतु अभी गुरु का स्वरूप नहीं दिखता है।

41. बेमिसाल सूफ़ी

किरमान (अरब देश) के सुल्तान शशिकला ने ऐलान किया कि वह अपनी इकलौती बेटी का निकाह किसी बेमिसाल सूफी युवक के साथ करेगा। एक साल बीत गया, कोई ऐसा सूफी नहीं मिला। फैसला वहां की शाही दरगाह के मौलवी को करना था।

अब हुआ यह कि एक दिन सुल्तान मस्जिद में नमाज़ पढ़ कर लौट रहा था। राह में उसने देखा कि कोई नौजवान किसी गुलाम (ऐसा बंधुआ मजदूर जिसका सबसे अधिक शोषण होता था) के पैर के कांटे निकाल रहा था। बस, उसे मिल गया बेमिसाल सूफी (मानव की सेवा करने वाला भक्त)। सुल्तान उसे शाही मौलवी के पास ले गया। उसका नाम शाहिद था। सुल्तान की बेटी फराह भी वहीं मौजूद थी। राजकुमारी ने सवाल किया - तेरे पास क्या है? शाहिद बोला - इबादत की जमीन और ईमान का आसमान है मेरे पास। मौलवी ने ताली बजाई, वाह! बेमिसाल! तब राजकुमारी फराह बोली - मेरे पास खुद का तसव्वुर और उसमें फना होने का जुनून है। मौलवी ने कहा- सुभान अल्लाह! आमीन! उधर शाहिद - फराह बोले, कुबूल, कुबूल, कुबूल! दोनों का निकाह हो गया। निकाह के तत्काल बाद में दोनों शाही मस्जिद में गए। शुकराना की नमाज़ अदा की। फिर वहां मौजूद दरवेश के कदमों में झुकते हुए बोले। हम मुरीद (खुदा से प्रेम करने वाला) हैं। हमें इसक हकीक (ईश्वर के दर्शन) की राह बताओ। दरवेश बोला कि अभी से? अभी तो तुम्हारा निकाह हुआ है। उसने कहा, जिस्मानी नहीं। तब उसे दरवेश ने कहा- तुम दोनों हिंदुस्तान के राधा-कृष्ण जैसे हो जाओ। शाहिद तुम्हारी इबादत करे और तुम शाहिद का तसव्वुर बन जाओ। देखो, राधा भी कृष्ण का तसव्वुर थी और कृष्ण थे राधा की इबादत।

दोनों मदरसे (स्कूल) में पढ़ाते थे। आधी रात के आसपास साथ-साथ इबादत करते थे। दस साल बाद दरवेश साहब उनके हुजरे पर पहुंचे तो दोनों को देखकर चौंक गए - शाहिद की शक्ल फराह जैसी लग रही थी और फराह की सूरत शाहिद जैसी हो गई थी। दोनों को गले लगाते हुए वह बोले - तुम्हारा तसव्वुफ़ (सूफी चेतना) और तसव्वुर (रूहानी ख्याल) दोनों बेमिसाल हैं।

फिर उस शहर में कई बरसों तक हवा उन दोनों की कहानी सुनाती रही और आसमान पर उनकी रूह दिखती रही।

42. योगी भर्तहरि का अनमोल कथन

मनुष्य के जीवन में सदैव ही कष्ट, रोग व भय-डर है। भोग करने पर रोग का भय। उच्च कुल में उत्पन्न होने पर बदनामी का डर। अधिक धन होने पर राजा (सरकार) का भय। मौन रहने पर दैन्य (दीन-हीन) समझे जाने का भय। बलशाली होने पर दुश्मन

का भय। रूपवान होने पर वृद्धावस्था का भय। विद्वान होने पर वाद-विवाद का भय। गुणवान होने पर दुर्जनों का भय। अच्छा शरीर होने पर यम (मृत्यु) का भय। इस संसार में सभी वस्तुएं भय उत्पन्न करने वाली हैं। केवल वैराग्य से ही निर्भयता आती है। इसलिए मानसिक स्तर पर सबसे विरक्त रहो। अनासक्त रहो। उनके नीचे दबो मत। इन्हे दबाकर रखो।

ये राजा भर्तहरि विरक्त हो गए। राज-पाट छोड़ दिया। नाथ योगी बन गए। तपस्या इतनी कठोर करी कि गुफा के पत्थर तक हिलने लगे। आंखों में जलाल इतना की झाड़ियां जलने लगीं। अपने गुरु के साथ हवा में चलने लगे। सिद्धियां उतरी तो अदृश्य होने लगे। गुरु गोरखनाथ इनसे इतने प्रसन्न हुए कि इन्हें इच्छाधारी मनुष्य होने का वर दे दिया। ये आज भी जीवित हैं। किसी न किसी रूप में मदद के लिए सामने आ जाते हैं। महर्षि रमण, अजयपाल, जोगी बाबा जी महाराज आदि भी इच्छाधारी हैं।

इच्छाधारी होने की सामान्य आयु 1000 साल होती है। अधिकतम एक कल्प होती है। परमहंस विशुद्धानंद जी के अनुसार सिद्धाश्रम में ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के अभी भी दर्शन होते हैं। वे इच्छाधारी हैं।

43. तेरे घड़े से पानी का एक कटोरा दे दे

बजरंगी पहली बार बुरहान बाबा की दरगाह में गया था। बाबा के कदम चूमें। अपना परिचय दिया - सरकारी अस्पताल में कंपाउंडर हूं। घर में माता-पिता, पत्नी एवं एक बच्चा है। बाबा ने प्रश्न किया कि यहां क्यों आए हो? वह बोला- बाबा, तेरे घड़े से पानी का एक कटोरा पीने आया हूं। बुरहान बाबा के पास ही मिट्टी का एक घड़ा रखा हुआ था। वे उस घड़े से पानी पीते थे। बजरंगी का जवाब सुनकर उन्होंने कहा - ठीक है। ऐसा ही होगा। तू रोज सत्संग में यहां आया कर।

प्रतिदिन सुबह वहां 7:00 बजे सत्संग होता था। बजरंगी 6:00 बजे ही पहुंच जाता था। साफ-सफाई करता, कुँए से घड़े में ताजा पानी भर देता, बाबा के कपड़े धो देता। फिर सत्संग में सबसे पीछे चुपचाप बैठा रहता। किसी से कुछ नहीं बोलता था। बाबा से कभी

कोई प्रश्न नहीं किया। उनके सामने कभी अपना सिर नहीं उठाया। ज्यादातर सत्संगी उसे मूर्ख समझते थे। मंद बुद्धि मानते थे। उसकी उपेक्षा करते थे।

इसी तरह सात साल बीत गए। किसी ने भी बजरंगी की आवाज नहीं सुनी। फिर एक दिन बाबा रोज की तरह सत्संग के लिए आए। एक घंटे मौन बैठे रहे। सत्संगी उकताने लगे। करवट बदलने लगे। फुसफुसाहट बढ़ने लगी। उधर बजरंगी का मन बाबा के मन से जुड़ गया। बाबा ने उसे अपने पास बुलाया और घड़े से पानी का कटोरा भर कर उसे दे दिया। कहा - ले, पी ले। पानी पीते ही आसमान के सितारे जमीन पर दिखने लगे। ब्रह्मांड चारों तरफ घूमने लगा। खुद के अंदर का सारा शरीर दिखने लगा। सारे देवी-देवता दिखने लगे। बाबा का विराट ज्योति रूप नज़र आने लगा। खुदी मिट गई। वह एक रूहानी अस्तित्व जैसा रह गया। सत्संगियों को उसके शरीर से खुशबू आने लगी। बजरंगी की श्वास में ओम् गूंजने लगा। कान में ओम गूंजने लगा। आंखों के सामने ज्योतिर्मय ओम का स्पंदन होने लगा। ध्यान, धारणा, समाधि सब एक साथ घटित हो गए। फिर बाबा की आवाज से वह सचेत हुआ - जाओ, मेरे कक्ष में आराम करो। वहां बैठते ही पुनः समाधि लग गई। जब समाधि टूटी तब शाम हो रही थी। कक्ष में बाबा बैठे थे। उसी की तरफ देख रहे थे। वे बोले कि तुम अब घर जाओ। प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में प्रतिदिन ध्यान-साधना करो। परमात्मा तुम्हारा कल्याण करेंगे।

44. गीता का सार

निष्काम कर्म, अनन्य भक्ति और तत्वज्ञान के द्वारा जन्म-मरण की बाध्यता से मुक्ति के लिए प्रेरित करना ही गीता का सार है।

मनुष्य का स्वभाव उसे अच्छे-बुरे कर्म में प्रवृत करता है। यह स्वभाव भी उसके विगत जन्मों में किए हुए कर्मों के प्रभाव से बनता है। स्वभाव दो तरह का होता है - नकारात्मक और सकारात्मक। नकारात्मक प्रभाव हमें दुखदाई कार्य करने के लिए उकसाता है। उनका फल कष्टमय होता है। ऐसे ही कर्म हमारा पुनर्जन्म कराते हैं। उधर सकारात्मक प्रभाव हमसे अच्छे कार्य करता है। भक्ति, धारणा, ध्यान में लगाता है। ऐसे कार्यों का फल आगामी जन्म में उच्च गति देता है, लेकिन पुनर्जन्म तो कराता ही है सुख भोगने के लिए। भक्ति में आगे बढ़ने के लिए निष्काम कर्म भी यही सकारात्मक स्वभाव कराता है। ऐसे

कर्म के पुनर्जन्मकारी संस्कार नहीं बनते हैं। धीरे-धीरे संचित संस्कार कटते जाते हैं और निष्काम भाव बढ़ता जाता है। जिस जन्म में एक भी संचित संस्कार शेष नहीं रहता उस जन्म के बाद पुनर्जन्म नहीं होता है।

इसी तरह निष्काम या अनन्य भक्ति हमें अंततः भगवान की शरण में पहुंचा देती है। वहां से संसार में पुनरागमन नहीं होता है। किंतु सकाम भक्ति का भी परिणाम पुनर्जन्म है। सकाम भक्ति करने वाले चार प्रकार के भक्त गीता में बताए गए हैं। धन मांगने वाले, संकट - रोग आदि दूर कराने वाले, ईश्वर को जानने की जिज्ञासा रखने वाले और मुक्ति चाहने वाले।

तीसरा पक्ष है ज्ञान। सकाम ज्ञान हमें विद्वान बनाता है, यश दिलाता है। वैज्ञानिक आविष्कार कराता है। अद्भुत निर्माण कार्य कराता है। किंतु बड़े से बड़े विद्वान का भी पुनर्जन्म अवश्य होता है। दूसरी तरफ निष्काम ज्ञान हमें स्वयं के आत्मा में ही परमात्मा की अनुभूति करा देता है। ऐसी अनुभूति के बाद संसार में पुनरागमन नहीं होता है।

ऐसे सारे कर्म कराने वाला अपना स्वभाव हम खुद ही बनाते हैं। विगत जन्म तो हमारे हाथ में नहीं है लेकिन वर्तमान जन्म में हम अवश्य ही आगामी जन्म के लिए श्रेष्ठतम स्वभाव की भूमि तैयार कर सकते हैं। तभी अनंत का मार्ग प्रशस्त होता है।

45. गुरु का ऊर्जा शरीर भी शक्तिपात करता है

ऊर्जा शरीर यानी महाकारण अवस्था! कारण शरीर में जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध के सूक्ष्म तत्व होते हैं, वे सब महाकारण शरीर में मिट जाते हैं। वहां जीवात्मा प्रकाशीय ऊर्जा स्वरूप रह जाती है। ऐसा ऊर्जा शरीर कभी भी ठोस यानी स्थूल रूप धारण कर सकता है। इसकी गति प्रकाश के वेग जितनी हो सकती है।

ये वर्तमान में देहधारी महात्माओं को आध्यात्मिक राह पर और अधिक आगे बढ़ा सकते हैं। ऐसा महात्मा आंतरिक शुद्धता की तरफ बढ़ रहे साधक पर शक्तिपात कर सकता है। योग्य साधुओं को गुरु लोक में प्रवेश करा सकता है।

दृष्टांत - सन 1990 के आसपास की बात है। उन दिनों पायलट बाबा का बहुत नाम था। उन्हें एक बार गुरु नानक देव का ऊर्जा शरीर स्थूल रूप में दिखा। वह स्थूल रूप अलग तरह का था। तब किसी रूहानी पुरुष ने उन्हें कहा कि यह गुरु नानक जी हैं। जाओ, चरण पकड़ लो। बाबा खुद को संभालते तब तक नानक जी प्रकाश की तेज गति से चलते हुए अंतर्ध्यान हो गए। बाबा ने समाधि लगाकर अपनी मानस तरंगों से ज्ञात कर लिया कि नानक जी हिमालय क्षेत्र में चले गए हैं। फिर पायलट बाबा स्वयं के सूक्ष्म शरीर से वहां पहुंच गए। नानक जी के चरणों में लेट गए। गुरु साहब ने तब उन्हें आगे का रास्ता बताया। उन पर रूहानी शक्तिपात किया। उसके प्रभाव से बाबा के मानस में गुरु लोक तक की सारी सूक्ष्मताएं उजागर हो गईं।

वहीं गुरु साहब ने बताया कि मोक्ष प्राप्त संत सदैव ऊर्जा शरीर में जीवित रहता है। वह स्वयं की सत् शक्ति से कभी भी कोई सा शरीर धारण करते हुए सामने आ सकता है। उसका संपर्क अपने साधना स्थल से कायम रहता है। वह किसी भी योग्य महापुरुष में अपनी शक्ति को उतार कर धरती पर कल्याण कार्य कर सकता है।

सारांश - जब तक जीव है तब तक जीवात्मा भी है। जो जीवात्माएं भोगवादी पुनर्जन्म से मुक्त हो जाती हैं, वे सूक्ष्म एवं कारण देह को भी पार करती हुई महाकरण देह में जीवित रहती हैं। धरती पर आध्यात्मिक आवश्यकता अथवा गुरु लोक से प्राप्त आदेशानुसार वे अपना अवतरण करती हैं। अच्छे साधकों को ऐसे अनुभव होते रहते हैं।

46. गुरु से नजदीकी सर्वोपरि

दक्षिण भारत में कहीं स्वामी शिवानंद जी का आश्रम था। आश्रम में प्रतिदिन सत्संग होता था। एक दिन गुरुजी बोले - जिसको जो मांगना है, अभी मांग लो। अपने-अपने मन में ही मांग लो, तुम्हें मिल जाएगा। ऐसा ही हुआ। श्रद्धालु एक-एक करके विदा हुए। सबसे पीछे एक दीन-हीन सा आदमी बैठा हुआ था, नाम था सदानंद। वह न तो उठा, न ही विदा हुआ। स्वामी जी खुद चलकर उसके पास पहुंचे और बोले - तुमने कुछ नहीं मांगा? बोलो, क्या चाहते हो? उसने बाबा के चरणों पर हाथ रखा, फिर कहा - आप खुद चलकर मेरे पास आ गए इससे ज्यादा और कुछ नहीं है। अब क्या

मांगूं। यह सुनकर बाबा प्रसन्न हुए। उसे गले से लगा लिया और अपना निजी सेवादार बना लिया।

अब तो बाबा की भूख-प्यास, सोने-जागने, सत्संग की व्यवस्था आदि सब उसका दायित्व हो गया। बाबा के मन से उसका जुड़ाव ऐसा हुआ कि प्यास बाबा को लगती, गला उसका सूखने लगता। भूख स्वामी जी को लगती, पेट में उसके खिंचाव होता। भजन बाबा करते, ध्यान उसका लग जाता। समाधि बाबा की लगती, सूक्ष्म लोक उसे दिखने लगता। बाबा ने उसे आत्मसात कर लिया। .....पांच साल में ही सदानंद चेतन हो गया। तब स्वामी जी ने कहा कि अब रूहानी यात्रा शुरू करो। जन-जन में ईश्वर के प्रति चेतना जगाओ, समाज का कल्याण करो। इन्हीं स्वामी सदानंद का दक्षिण में बहुत नाम है।

47. व्यक्ति नहीं, शक्ति ही गुरु है

शक्ति यानी पूरे ब्रह्मांड का बोध करा देने वाली चेतन ऊर्जा। यह अदृश्य होती है। इसका दृश्य अथवा साकार रूप शरीरधारी गुरु होता है।

अदृश्य परमाणु का साकार रूप पदार्थ। ब्रह्म का साकार रूप ब्रह्मांड। जीवात्मा का दृश्य रूप शरीर। ऐसे ही बोध शक्ति का स्थूल आकार है गुरु। गुरु के हृदय में होती है ऐसी बोध शक्ति। ऐसी शक्ति में संपूर्ण ज्ञान संचित रहता है। जिस तरह शुक्राणु-अंडाणु में माता-पिता का सारा ढांचा एवं गुण-अवगुण सन्निहित रहते हैं, वैसे ही शक्ति में संबोधि निहित रहती है। इसलिए गुरु के हृदय से जुड़ने के फलस्वरुप ही शिष्य को ज्ञान होता है। शिष्य उस बोध शक्ति से जुड़ जाता है। तत्काल ज्ञानोदय हो जाता है। सृजन, विस्तार, ध्वंस की सामर्थ्य आ जाती है। प्रकृति के परमाणुओं पर, प्रकाश पर, प्राकृतिक बल पर नियंत्रण हो जाता है। चीन के वैज्ञानिक जो कृत्रिम सूरज-चांद अभी बना रहे हैं वैसा ही विश्वामित्र जी ने हजारों साल पहले अपनी योग शक्ति से कर देने का नमूना पेश किया था। सूर्य विज्ञान का ज्ञाता महात्मा प्रकृति में तत्काल मनचाहा बदलाव कर सकता है।

इस शक्ति को जीवात्मा, आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, भगवान, ईश्वर आदि कह दिया गया है। प्रत्येक मनुष्य में यही आत्मा ऐसी ही अपार शक्ति की संज्ञा है। इसका संज्ञान होते ही हृदय में ऊर्जा का महा विस्फोट होता है। ऐसा संज्ञान गुरु कराता है। तब मनुष्य में सर्व

सामर्थ्य उतरती है। यही मनुष्य के उत्थान की उच्चतम ब्रह्मावस्था है। श्रीकृष्ण इसी का शरीरधारी अस्तित्व थे।

एक प्रसंग - गुरुदेव अपने कई शिष्यों के साथ पानीपत गए हुए थे। वहां सूफी फ़कीर बू अली कलंदर की दरगाह है। आप तो अपने एक मुरीद के घर बैठ गए और शिष्यों को दरगाह की जियारत करने के लिए भेज दिया। वे सब कलंदर के आस्ताने में बैठे, किंतु ध्यान केंद्रित नहीं था। एक महिला मुरीद वहां गुरु जी के ध्यान में बैठी रही। गुरुदेव ने उस पर अपनी जगह से शक्तिपात किया। उसे कलंदर के दर्शन हुए। गुरुदेव ने बाद में सबसे पूछा कि क्या बू अली कलंदर को देखा? लेकिन उस महिला के अलावा अन्य कोई जवाब नहीं दे सका। कारण यह है कि वह अपने गुरु के हृदय से (गुरु शक्ति से) जुड़े ही नहीं थे।

48. गुरु ब्रह्म शक्ति का ज्ञान कराता है

जो मनुष्य ब्रह्म की अवस्था में विचरण करता है उसे ब्रह्मर्षि कहते हैं। जो ब्रह्म शक्ति का ज्ञाता होता है उसे महात्मा कहते हैं। जो महात्मा दूसरों को भी ब्रह्म शक्ति का ज्ञान करता है उसे सद्गुरु कहते हैं।

ब्रह्म शक्ति यानी पूरे ब्रह्मांड का बोध करा देने वाली चेतन ऊर्जा। इसमें जड़ जगत एवं जीव जगत की संरचना संबंधी सारे तत्व एवं ज्ञान निहित होता है। यह भौतिक एवं जैव परमाणुओं के रूप में संचित रहता है। ज्ञात इतिहास की सारी घटनाओं, वस्तुओं, तथा ज्ञान के सूक्ष्म बिंदु ब्रह्मांडीय ऊर्जा या शक्ति में सुरक्षित हैं। इनकी डी कोडिंग (अर्थ समझ लेना) करने में समर्थ महात्मा, गुरु आदि सर्वज्ञाता बन जाते हैं। गुरु यही प्रक्रिया अपने योग्य शिष्य को पढ़ाता है।

विश्लेषण - अदृश्य परमाणु का साकार रूप पदार्थ। ब्रह्म का साकार रूप ब्रह्मांड। जीवात्मा का दृश्य रूप शरीर। ऐसे ही ब्रह्म चेतना या बोध शक्ति का स्थूल आकार है गुरु। गुरु के हृदय (आज्ञा चक्र वाले त्रिकोण में श्वेत बिंदु) में यह चेतना स्थित होती है। ऐसी शक्ति में संपूर्ण ज्ञान संचित रहता है। जिस तरह शुक्राणु-अंडाणु में पिता-माता का सारा ढांचा एवं गुण-अवगुण सन्निहित रहते हैं, वैसे ही ब्रह्म् शक्ति में संबोधि (सारा ज्ञान) निहित रहती है।

इसीलिए गुरु के हृदय से जुड़ने के फलस्वरुप ही शिष्य को ज्ञान होता है। शिष्य उस बोध शक्ति से जुड़ जाता है। तत्काल ज्ञानोदय हो जाता है। सृजन, विस्तार, ध्वंस की सामर्थ्य आ जाती है। प्रकृति के परमाणुओं पर, प्रकाश पर, प्राकृतिक बल पर नियंत्रण हो जाता है। चीन के वैज्ञानिक जो कृत्रिम सूरज-चांद अभी बना रहे हैं वैसा ही विश्वामित्र जी ने हजारों साल पहले अपनी योग शक्ति से कर देने का नमूना पेश किया था। सूर्य विज्ञान का ज्ञाता महात्मा प्रकृति में तत्काल मनचाहा बदलाव कर सकता है।

इसी शक्ति को जीवात्मा, आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म्, भगवान, ईश्वर आदि का नाम दिया गया है। प्रत्येक मनुष्य में यही आत्मा ऐसी ही अपार शक्ति की संज्ञा है। इसका संज्ञान होते ही हृदय में ऊर्जा का महाविस्फोट होता है। ऐसा संज्ञान गुरु कराता है। तब मनुष्य में सर्व-सामर्थ्य उतरती है। यही मनुष्य के उत्थान की उच्चतम ब्रह्मावस्था है। श्री कृष्ण इसी के शरीरधारी अस्तित्व थे।

49. ब्रह्म, प्राण, आत्मा और जीव

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में ब्रह्म को प्राणमय और जीव को बीज रूप कर्मों का आधार कहा गया है। ऐसे ही प्रणव को ब्रह्मांडीय नाद या स्वर और प्राण को उस दिव्य नाद की ऊर्जा अथवा शक्ति माना गया है। मन को जीव में पड़ी हुई सुप्त इच्छाओं का परिणाम या संरचना कहा गया है। आत्मा यानी वह चेतन शक्ति जो सर्वत्र व्याप्त है तथा जिसकी गति सब जगह है। आत्मा संपूर्ण जीव जगत की कर्म शक्ति है। प्राण सजीव शरीर को सक्रिय रखने वाली ऊर्जा है। वायु का काम है सारे जीवों एवं वनस्पतियों को जैव परमाणु एवं पंच महाभूतों के सूक्ष्मतम अणुओं की आपूर्ति करते रहना। वायु की जरूरत शरीर की अरबों कोशिकाओं को है। प्राण की जरूरत देह में आवश्यक जैव विद्युत का अनुपात कायम रखने के लिए है। आत्मा जब जीव में व्याप्त हो जाती है तब उसे जीवात्मा कहते हैं। आत्मा हीरे की कणी जैसे वर्ण की एवं अणु से एक लाख गुना सूक्ष्म प्रकाश बिंदु है। प्राण का वर्ण हल्का गुलाबी और उसमें सुनहरी झिलमिलाहट जैसा है। वायु में ऑक्सीजन का रंग आकाश जैसा नीला होता है। माइनस 278 डिग्री सेल्सियस तापमान पर ऑक्सीजन गैस जम जाती है। ठोस बन जाती है। तब उसका वर्ण नीला दिखाई देता है। मन का वर्ण मोती जैसा एवं बुद्धि का तेज सूर्य के प्रकाश जैसा श्वेत कहा गया है।

संसार के सारे पदार्थ जब ऊर्जा में रूपांतरित होकर सुपर एटम या महा परमाणु के रूप में हो जाते हैं तब उसे प्रलय कहा जाता है। नासदीय सूक्त में प्रलयावस्था को अप्रकाशित गर्भोदक (गर्भ में भरा हुआ पानी जिसमें बच्चा पनपता है) कहा गया है। विज्ञान जिसे सुपर एटम कहता है उसे ऋग्वेद में सुनहरा अंडा माना गया है। अंडे में नए जीव का भ्रूण होता है। इसी तरह ब्रह्मांडीय सुनहरे अंडे में नए संसार का भ्रूण रहता है। गर्भाशय में शिशु का प्रसव और सुनहरे अंडे से संसार की अभिव्यक्ति होती है। यहां अभिव्यक्ति शब्द सही है - संसार का निर्माण नहीं होता है, वह अथाह ऊर्जा से पदार्थों में रूपांतरित होता है। जिस तरह गर्भ में शिशु करोड़ों सजीव कोशिकाओं के सजीव रूपांतरण का परिणाम होता है। हम देखते हैं कि पत्थर, बर्फ, मिट्टी आदि में अक्रिय पड़े रहने वाले असंख्य जीवाणु अनुकूल परिवेश में सक्रिय हो जाते हैं; ठीक इसी भांति प्रलय रूपी सुनहरे अंडे में सुप्त पड़े हुए जड़-जीव जगत की वस्तुएं भी अपनी-अपनी अवधि (करोड़ों साल) में अपना-अपना स्वरूप प्राप्त कर लेती हैं। सुप्त जीवात्माओं को उनके बीज रूप संचित कर्मों के अनुकूल गर्भ मिलता है। यह क्रम चलता रहता है। पिता-माता से संतान पैदा होती है और पुराने ब्रह्मांड से नया ब्रह्मांड निकलता है।

50. शिष्य के मन की चारों अवस्थाओं पर गुरु का नियंत्रण रहता है

नाम दीक्षा के बाद शिष्य के मन की चारों अवस्थाओं पर गुरु का नियंत्रण रहता है। मन की चार अवस्थाएं ये बताई जाती हैं - चेतन, अवचेतन, अचेतन और अति चेतन। शिष्य के चेतन मन को गुरु मौखिक उपदेश करता है। वेद पुराण का ज्ञान करता है। अवचेतन यानी स्वप्न की दशा में उसे कई बार उसके पूर्व जन्मों के दृश्य दिखता है। पूर्व कर्मों की झलक दिखाता है। अन्य मंत्र की दीक्षा भी देता है अथवा किसी दूसरे महात्मा के द्वारा शिष्य का कल्याण कराने के लिए कोई सूत्र दिला देता है।

एक दृष्टांत - कोई रानी किसी महात्मा से नाम दीक्षा चाहती थी, किंतु राजा ने मना कर दिया। तब उस महात्मा ने रानी के स्वप्न में जाकर दीक्षा संपन्न की। ऐसे स्वप्न प्राय: योग निद्रा जैसे होते हैं। आप न तो सो रहे हैं, न जाग रहे हैं; आप सजग हैं और इसी दशा में गुरु आपके साथ रूहानी गुजरान कर देता है ।

अचेतन मन में सारा कचरा भरा रहता है। पूर्व जन्मों के सारे संचित भोग संस्कार यहीं जमा रहते हैं। गुरु की शक्ति यहीं सफाई करती रहती है। साधक जितना संकल्पित रहता है, गुरु उसी अनुपात में अचेतन मन को साफ करता है। साधक को इस कृपा का ज्ञान होता रहता है। अब मन की चौथी दशा आती है, अति चेतन। शिष्य को यहां तक पहुंचा कर गुरु उसे परम सत्ता के दर्शन कराता है। उसे स्वयं के जीवात्मा का बोध करा देता है। इसी को पार लगाना कहते हैं। यहां स्थित रहना शिष्य की जिम्मेदारी होती है। कबीर साहब के अनुसार यह सारा काम देहधारी गुरु ही कराता है। कारण शरीर में पहुंचे हुए गुरु के ज्योति रूप के साथ संपर्क करना शिष्य के लिए बहुत कठिन होता है। छोटी-मोटी अनुभूतियां तो होती रहती हैं लेकिन पार उतारने के लिए आपसी संपर्क जैसी निरंतरता की आवश्यकता होती है। वही कठिन होता है।

51. ब्रह्म पुराण का सुनहरा अंडा हमारी आकाशगंगा के पेट में है

खगोल विज्ञान के आधुनिकतम शोध कार्य के अनुसार हमारी आकाशगंगा में एक सौ अरब तारे यानी सूर्य हैं। इनमें कम से कम पांच अरब ग्रह हैं। ऐसे चालीस अरब ग्रहों पर जीवन की संभावना देखी जा रही है। जो ग्रह लाल हैं वहां ऐसी संभावना ज्यादा है। वहां अवश्य ही मिट्टी में आयरन ऑक्साइड ज्यादा होगा। मिट्टी में लोहे के कण अधिक होने और उनका ऑक्सीकरण (जंग लगने) से मिट्टी लाल दिखने लगती है।

हमारे वेद-पुराण में हिरण्यगर्भ का बहुत उल्लेख आता है। इसका अर्थ है सुनहरे वर्ण का अंडा। इसी अंडे से सृष्टि की रचना हुई है। कहा जाता है कि इसमें संसार की रचना का सारा कच्चा माल भरा हुआ था। इधर विज्ञान भी ऐसी बात कह रहा है। हमारी आकाशगंगा यानी मिल्की वे एक विशाल अंडाकार संरचना है। यह लगभग दस लाख प्रकाश वर्ष जितना बड़ा है। एक प्रकाश वर्ष में नौ खरब पच्चीस अरब किलोमीटर होते हैं। इस तरह यह चमकीला अंडा कितना बड़ा है, इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। यह वेद विज्ञान वाला हिरण्यगर्भ ही है। इसी चमकीली अंडाकार संरचना से हमारे सौरमंडल की उत्पत्ति हुई है।

एक अन्य स्पष्टीकरण - सृजन की ऊर्जा या शक्ति से भरी हुई यह आकाशगंगा ही ब्रह्मा है। यह गैलेक्सी का देव-मानवीकरण है। यानी मनुष्य वाले आकार के ब्रह्मा। आकाश

गंगा की चमक ही क्षीरसागर है जहां सर्वव्यापी ऊर्जा के प्रतीक विष्णु जी बैठे हैं। इस गैलेक्सी में संहार शक्ति के जो ब्लैक होल हैं, वे ही महेश हैं। गैलेक्सी से धरती पर बरसते रहने वाले खनिजीय असंख्य परमाणुओं का मानवीकरण लक्ष्मी है। ब्रह्मांड में जो नित्य आकाश है वही कथित बैकुंठ है - ऐसा स्पेस जो बिगबैंग से पहले भी था और इसी में विज्ञान का 'महापुराण' यानी सुपर एटम था। एक तारे की मृत्यु वाली अवधि ही ब्रह्मा का एक दिव्य दिन है (करोड़ों साल)। पूरी आकाश गंगा के लुप्त हो जाने (अरबों- खरबों वर्ष) की अवधि को ब्रह्मा के सौ दिव्य वर्ष कहा गया है। किसी ग्रह पर वायुमंडल के टूट जाने को प्रलय माना गया है। ऐसा होने के बाद वह ग्रह वीरान हो जाता है जैसे आज मंगल ग्रह।

वापस अपनी बात पर चलें - हमारा मंगल ग्रह भी लाल वर्ण का है। वहां नासा ने टिफिन जैसी एक मशीन भेजी है। वह मंगल पर ऑक्सीजन फैला रही है। हमारे वैज्ञानिकों का अनुमान है कि भविष्य में यहां मानव सभ्यता जरूर आबाद होगी।

52. संसार में कुछ भी मिटता नहीं है

रूस में धरती के अंदर बारह हजार मीटर गहरा छेद किया गया था। तब इतनी गहरी चट्टानों में भी एक कोशिका वाले जीवाणुओं के जीवाश्म मिले। वे लगभग दो अरब साल पुराने थे। आश्चर्य इस बात का है कि इतनी लंबी अवधि के बाद में भी वे मिटे नहीं।

इस धरती पर जो कुछ घटित होता है उसकी ध्वनि तरंगें अंतरिक्ष में जमा रहती हैं; मिटती नहीं हैं। उन्हें पकड़ कर वापस दृश्य-श्रव्य में रूपांतरित करने के लिए प्रयोग किये जा रहे हैं।

मनुष्य अपने जीवन में जो कुछ बोलता है, कर्म करता है और सोचता है, उसकी छाप मन पर पड़ जाती है। इसी छाप को लेकर जीवात्मा नए शरीर में चली जाती है। ऐसा क्रम सैकड़ों जन्मों तक चलता रहता है। प्रत्येक जाति के गोत्र पुरुष की एक जीन हजारों साल तक वैसी की वैसी पुत्र में जाती रहती है। वह छाप मिटती नहीं है।

धरती का कोई भी पदार्थ केवल रूप बदलता है, मिटता नहीं है। पहले हम पदार्थ की तीन ही अवस्थाएं जानते थे लेकिन अब छ: अवस्थाओं को ज्ञात किया जा चुका है।

इस तरह कथित महाप्रलय तक संसार में कुछ भी मिटता नहीं है; रूपांतरित होता रहता है। धरती के अंदर भी ऐसा निरंतर हो रहा है। बारह कि.मी. नीचे प्लास्टिक जैसी चट्टानें हैं जिसमें छेद नहीं किया जा सकता है। वहां तापमान 180 डिग्री सेल्सियस है। वहां धरातल एवं चुंबकीय परिवर्तन लगातार हो रहे हैं। गौतम बुद्ध ने भी इसीलिए कहा था कि नित्य परिवर्तन ही सत्य है।

53. गीता में परमात्मा के छह रूप (अध्याय 13, श्लोक 22)

जीव से लेकर ब्रह्म तक गीता के इस श्लोक में परमात्मा के छह रूप बताए गए हैं। कृष्ण कहते हैं कि इस देह में स्थित आत्मा वास्तव में परमात्मा ही है। वह हमारे सारे कार्यों का साक्षी है। हमारे जीवन का द्रष्टा है। हमारे एकदम निकट होने के कारण उपद्रष्टा कहा जाता है। यह परमात्मा का पहला रूप है। दूसरा - समय-समय पर वह हमें बुरा काम करने से मना करता है और अच्छा कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। इसे हम आत्मा की आवाज कहते हैं। प्रस्तुत श्लोक में भगवान की इस भूमिका को 'अनुमंता' कहा गया है - सम्मति देने वाला। तीसरा रूप है भर्ता - भरण पोषण करने वाला। सबको धारण करने वाला। सब जीवों का आधार स्वामी। हमारे अस्तित्व का स्वामी। कृष्ण कहते हैं कि मेरे भक्त के लिए मैं योगक्षेम की व्यवस्था करता हूं। जो कुछ उसे चाहिए वह उसे देने का उपाय करा देता हूं और फिर उसे दिए हुए की रक्षा भी करता हूं। सूर्य के माध्यम से जीवजगत के लिए वनस्पतियों का पल्लवन प्रभु ही करते हैं। चौथा रूप है - भोक्ता। यज्ञ में दी जाने वाली आहुतियों के द्रव्य को वे विष्णु रूप में ग्रहण करते हैं। जिन देवी-देवताओं के नाम से आहुतियां दी जाती हैं वे सब अंततः विष्णु के सर्वव्यापी रूप को ही मिलती हैं। विष्णु का शाब्दिक अर्थ है - सर्व व्यापकता। सामान्य मनुष्य भी जो नित प्रति भोजन सामग्री का भोग लगाते हैं, उसे भी सुगंध रूप से वे ग्रहण करते हैं। इसी रूप को भोक्ता कहा जाता है।

अब उन्हें महेश्वर भी कहा गया है। पुराण के तीनों प्रमुख देवता या ईश्वर (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) परमात्मा की ही सगुण सत्ता के साकार रूप हैं। इस सगुण ब्रह्म को क्षर (एक सौ कल्प की दिव्य अवधि के बाद बदलने वाला) ब्रह्म भी कहते हैं। अंतिम है - शुद्ध सच्चिदानंद रूप। अक्षर (कभी नष्ट नहीं होने वाला) ब्रह्म। अव्यक्त, अनादि, अनंत, निराकार स्वरूप। यही सर्वव्यापी सचेतन ऊर्जा है, विराट है, ओंकार है, अनादि-नाद है।

इस तरह परमात्मा के प्रथम चार रूप तो मनुष्य से सम्बद्ध हैं। पांचवा भेद सगुण ब्रह्म जो ब्रह्मा-विष्णु- महेश से संबंधित है। छठा निरपेक्ष है - किसी से कोई समबद्धता नहीं। यह ब्रह्मांड को घेरे रहने वाली अदृश्य ऊर्जा है।

54. दीया बत्ती

संध्या के समय दीया बत्ती का रिवाज है। यह कर्मकांड है, भक्ति नहीं। यह उपचार है - नकारात्मकता से बचने का, सकारात्मक शक्तियों के स्वागत का और दैवी शक्ति को अपने मन में उतारने का।

यों तो चार संध्या होती हैं - सुबह की संध्या में देव शक्ति का स्मरण। दोपहर की संध्या में दुर्गा यानी दिन की प्रखर शक्ति को नमन। सायंकालीन संध्या में नकारात्मक शक्तियों से बचने के लिए दीया बत्ती और आरती। रात में मध्यकालीन संध्या, प्रेत शक्तियों को साधने के लिए तांत्रिक कर्म।

अपने मन को स्वयं के अंदर स्थिर करने का नाम है संध्या - सम् और ध्या यानी संध्या। नाक में दोनों नथुनों में श्वास-प्रश्वास चलता रहे। यह सम या सुषुम्ना नाड़ी में श्वास के स्थिर होने की अवस्था है। संध्या के वक्त इसी अवस्था में दीया बत्ती करना और भगवान के नाम का सुमिरन करना। यही है दीया बत्ती।

दिन के अवसान के साथ ही रात आरम्भ होती है। रात के अंधेरे के विरुद्ध रोशनी का प्रतीक है दीपक। जलता हुआ दीपक पांचों तत्वों के एकत्व का प्रतीक है - मिट्टी यानी पृथ्वी, घी या तेल यानी जल, जलती हुई बाती यानी अग्नि तत्व, दीपक को जलने में मदद करती है वायु और चारों तरफ व्याप्त आकाश में दीपक जलता है। इन पांचों तत्वों की साक्षी में हमारा मन ईश्वर का सुमिरन करता है, बुद्धि उस दीपक को तैयार करती है तथा 'मैं' ध्यान में लीन होता है। परिणामस्वरूप मन शांत होता है, सम की अवस्था में स्थिर होता है। यह है दीया बत्ती के विधान की वास्तविकता। पांच मिनट भी ऐसा हो जाए तो पर्याप्त है।

सुबह की संध्या - यह रात ढाई बजे के बाद विष्णु मुहूर्त, शिव मुहूर्त और ब्रह्मा मुहूर्त की

अमृत वेला के बाद आती है। हमें देव ऊर्जा के स्वागत के लिए प्रेरित करती है। दैवी मंगलाचरण के साथ दिन का आरम्भ करना सिखाती है। दोपहर की संध्या राजा रघु, श्रीराम के दादाजी, को करते हुए देख कर रावण भी आश्चर्य चकित हो गया था।

55. मां ने बेटे को ही अपना गुरू बनाया और मुक्त हो गई

कपिल मुनि की माता का नाम देवहूति था। देवहूति ने अपने पुत्र को ही गुरू के रूप मे धारण किया था। तब वह सत्तर साल की थी। दीक्षा के वक्त गुरू ने समझाया कि - मनुष्य के चेतन मन का संकल्प ही शिष्य होता है, देह नहीं। शिष्य न स्त्रीलिंग होता है, न पुल्लिंग। शिष्य का कोई नाम नहीं होता है, वह केवल शिष्य होता है। शिष्य का मतलब है स्वयं को शून्य करते हुए गुरू के पास बैठना। मन को सांसारिक कामनाओं से खाली करने के बाद गुरू की शरण में रहना।

इसी तरह आत्मानुभूति वाले ज्ञान का नाम गुरू है। वह किसी का पिता, पुत्र, मित्र, शत्रु नहीं होता है। यदि शिष्य का कार्य पूरा होने से पहले ही उसका देहांत हो जाता है तो सूक्ष्म देहधारा जीवात्मा श्वेत लोक में रहते हुए जप-तप को पूरा करती है। मांडूक्य उपनिषद के अनुसार भी सूक्ष्म शरीर हिमालय में सुमेरू पर्वत से ऊपर स्थित श्वेत लोक मे रहते हैं।

देवहूति को उन्होंने बारह साल तक योग एवं सांख्य दर्शन का ज्ञान कराया। देवहूति स्वयं आचार्य हो गयी। अब शिष्य के रूप में उनका काम पूरा हो गया तो जीवन की सार्थकता भी सिद्ध हुई। तब कोई कार्य शेष नहीं रहा। शरीर की जरूरत नहीं रही। देवहूति ने गुरू से अनुमति ली और योग विधि से देह त्याग दी। इस तरह अपने गुरू के ही सामने वह मुक्त हो गई।

देवहूति को उन्होंने बारह साल तक योग एवं सांख्य दर्शन का ज्ञान कराया। देवहूति स्वयं आचार्य हो गयी। जब शिस्य के रूप मे उनका काम पूरा हो गया तो जीवन की सार्थकता भी सिद् हुई। तब कोई कार्य शेष नहीं रहा।शरीर की जरूरत नहीं रही। देवहूति ने गुरू से अनुमति ली और योग विधि से देह त्याग दी। इस तरह अपने गुरू के ही सामने वह मुक्त हो गयी।

56. शिष्य का हृदय ही गुरू का आश्रम है

गीता में नौवें अध्याय के उन्तीसवें श्लोक में कृष्ण कहते हैं कि मेरा भक्त मेरे हृदय मे रहता है और मैं स्वयं भक्त के हृदय में रहता हूं।

हमारे गुरूदेव भी कहते थे कि गुरू अपने शिष्य के हृदय में रहता है। नाम दीक्षा के वक्त गुरू अपने ज्ञान रूप से शिष्य के हृदय में उतर जाता है। इसलिए शिष्य का हृदय ही चिन्नमय (चित्त रूपी) गुरू का आश्रम है। दीक्षा गुरू वहां सदैव रहता है। किंतु शिष्य यह मानने से डरता है। गुरू यदि अंदर ही है तो फिर शिष्य की सारी पोल खुल जायेगी - इस डर से मुरीद अपने गुरू को स्वयं के हृदय मे देखने की कोशिश ही नहीं करता है। गुरू अपने रूप का हमें हमारे चारों तरफ एहसास कराता है। अपनी रूहानी गंध से, रूहानी स्पर्श से और रूहानी निर्देशों से साबित करता है कि वह हमारे साथ है। लेकिन हम यह स्वीकार नहीं करते हैं। जो शिष्य यह बात धारण कर लेते हैं वे आगे निकल जाते हैं। उनके लिए हृदय ही गुरू का आश्रम हो जाता है।

यही बात स्वामी मुक्तानन्द जी भी कहते थे - आश्रम आने की जरूरत नहीं है। तुम आश्रम को ही अपने घर ले जाओ। यदि आश्रम वाले अनुशासन का पालन घर में करते हो तो घर भी आश्रम ही है। किंतु मनुष्य का भोगवादी मन ऐसा नहीं होने देता है। उसे तो लग्ज़री लाईफ (विलासिता) पसंद है।

कृष्ण ने भक्त की बात कही है और गुरू जी शिष्य की बात कहते हैं। सत्य तो एक ही है।

57. समय बड़ा बलवान

तुलसी नर का क्या बड़ा, समय बड़ा बलवान।
काबा लूटी गोपियां, वही अर्जुन वही बाण।

कृष्ण के आदेशानुसार अर्जुन द्वारका से गोप-गोपियों को गोकुल ले जा रहा था। उसने अपने गांडीव धनुष पर हाथ रखते हुए कृष्ण को कहा था कि आप निश्चिंत रहो। उसका आशय यह था कि जिस धनुष से मैंने महाभारत युद्ध जीत लिया उसके होते हुए

अब कौन मेरा मार्ग रोकेगा। लेकिन थोड़ा आगे जाते ही अर्जुन का घमंड चूर हो गया। गुजरात के प्रभास पाटन क्षेत्र में काबा लुटेरों ने उसे घेर लिया। गोपियों के आभूषण लूट लिए। अर्जुन उस वक्त धनुष पर प्रत्यंचा यानी डोरी ही नहीं चढ़ा सका। उस अभिमंत्रित धनुष का मंत्र ही भूल गया। बाद में लुटेरों को पता चला कि ये तो श्रीकृष्ण की गोपियां हैं तो उन्होने सारा सामान लौटा दिया और उन्हें वन क्षेत्र से सुरक्षित आगे निकाल दिया।

अब समझिए कि गांडीव धनुष कितना प्रचंड था। इसे कठोर बांस (गण्डी) से स्वयं प्रजापति ब्रह्मा ने बनाया था। इसे अभिमंत्रित करते हुए उन्होंने भगवान शिव को सौंप दिया। शिव जी ने यह इंद्र को दिया। इंद्र ने अग्नि को दिया और अग्निदेव ने ये धनुष अर्जुन को दिया था। सभी ने इसे अपनी-अपनी शक्तियों से अभिमंत्रित किया। इसमें 108 डोरियां थी। कहा जाता है कि इस धनुष से एक ही बार में दस हजार तक बाण छोड़े जा सकते थे। यह मंत्र शक्ति से सक्रिय होता था। इतने प्रचंड धनुष के होते हुए भी अर्जुन श्रीकृष्ण की गोपियों की रक्षा नहीं कर सका। इसीलिए यह कहा गया है कि समय ही सबसे अधिक बलवान होता है।

58. अपनी श्वास-प्रश्वास को प्रतिदिन पांच मिनट अवश्य देखो

यह श्वास योग है। श्वास के जरिए स्वयं की जीवात्मा में परम चेतना की अनुभूति का सबसे सरल उपाय। जिस तरह आप आकाश को देखते हो उसी तरह अंदर आती-जाती श्वास को देखने का अभ्यास करो। साँस या तो नाभि से उठती है या नाक के नथुनों से। इसी पर ध्यान टिकाओ। नहीं टिकता है तो मन में साँसों की गिनती करते रहो। श्वास-प्रश्वास मिल कर एक श्वास मानी जाती है। इस तरह तीन सौ साँस गिनो। कई बार गिनती भूल जाओगे तो वापस आगे गिनना शुरू करो। तीन माह के दौरान अच्छा अभ्यास हो जाएगा। धीरे-धीरे ऐसे अभ्यास को आधे घण्टे तक ले जाओ। पूरी दुनियां में यह सर्वाधिक प्रचलित साधना है।

हमारी श्वास हमें प्राण तक पहुँचाती है। यह प्राण हमारे मन से जुड़ा हुआ है। प्राण से प्रेरित मन खुद की ही अतिचेतन अवस्था में पहुंचता है। तब वह हमें अपनी जीवात्मा तक ले जाता है। इसी जीवात्मा को व्यक्तिगत आत्मा कहा जाता है। यह जीवात्मा हमें परमात्मा या परम चेतना से जोड़ती है। तब अति चेतन मन उस विश्वव्यापी चेतना के साथ एकाकार

हो जाता है। इसे समष्टि मन कहते हैं। यही समष्टि चेतना, परम सत्ता या ब्रह्म है। योगियों की ऐसी अवस्था को ही जीवन मुक्ति माना जाता है। अब उनका मन संसार में रहते हुए भी निर्लिप्त है। वे जब स्वेच्छा से देह त्याग कर देते हैं तब विदेह, मुक्ति या मोक्ष वाली अवस्था होती है।

हमारे गुरूदेव सदैव कहते थे कि दीक्षा मंत्र का श्वास-प्रश्वास की लय के अनुसार जाप करो।

59. स्त्री चरित्रं..देवो न जानेति, कुतो मनुष्यः (भाग – 2)

पति धर्म में सती स्त्री बहुत ऊंची उठ जाती है। हमारे पुराण का एक प्रसंग है। वत्रासुर के विरुद्ध देवासुर संग्राम था। प्रथम चरण में देवता बुरी तरह पराजित हो चुके थे। युद्ध अब निर्णायक होना था। देवगुरु बृहस्पति ने शची को कहा - तुम अपने पति देवराज इंद्र की कलाई पर रक्षा सूत्र बांधो। शची स्वयं असुर थी। देवताओं को सन्देह था कि शची असुरों के खिलाफ ऐसा करेगी। जरा सोचिए कि उस नारी का सत् कितना ऊंचा होगा! उसके रक्षासूत्र से ही देवता उस निर्णायक युद्ध में विजयी हो गए। विश्व इतिहास की पहली राखी एक पत्नी ने अपने पति की कलाई पर बांधी। युद्ध में वत्रासुर मारा गया। तब कहावत हो गई कि स्त्री चरित्रं..देवो न जानेति, कुतो मनुष्यः।

ऋषि अगस्त्य ने, विदर्भ के राजा को विवश किया कि वह राजकुमारी लोपमुद्रा का विवाह उनसे कर दे। राजकुमारी विपुल धन-सम्पत्ति लेकर ऋषि के आश्रम पहुंची। वहां अन्य ऋषिकाओं के व्यक्तित्व की हिमगिरि जैसी गरिमा देखी तो स्तब्ध रह गई। सारी सम्पत्ति दान कर दी। विवाहित होते हुए भी ब्रह्मचारिणी की तरह रही। वेदाध्ययन किया। ध्यान, धारणा, आसन, प्राणायाम किया और वह रूप गर्विता राजकुमारी अब ब्रह्मवादिनी हो गई। उसने वैदिक ऋचाएं लिखीं। उसने कहा - ऋषि की कुटिया में भक्ति का नित्य उत्सव होता है और सम्पत्ति उसकी देहरी पर सिर झुकाए रहती है। जय स्त्री चरितं!

अद्भुत यशोधरा - 'गौतम' जब "बुद्ध" हो कर पिता से मिलने गए, तो यशोधरा को भी सूचित किया गया। वह बोली - जिस शयनकक्ष में मुझे छोड़ कर भागे थे, उसी में आकर मिलना पड़ेगा। गौतम ने उसे देखा तो विस्मित रह गए! गृहस्थ योगिन यशोधरा। वार्ता के

दौरान उसने कहा - पुरुष अपनी भोगी प्रवृत्ति के कारण दुर्बल होता है। आपने इसीलिए पलायन किया। स्त्री तन से भोगी किंतु मन से योगी होती है। इसी कारण मैं शीघ्र ही स्थिर हो गई। घर में ही भिक्षुणी बन गई। भोग कामनाओं से ऊपर उठ गई। फिर उसने और गौतम की बड़ी माँ महाप्रजापति गौतमी ने भिक्षुणी संघ बनाया। बुद्ध को मठ में स्त्रियों के प्रवेश के लिए सहमत किया। अंततः गौतमी एवं यशोधरा, दोनों को आत्मबोध हुआ; वे बोधि हुईं।

एक अन्य दृष्टांत - बादशाह अकबर का समय था। ओरछा के राजा इंद्रजीत की प्रेयसी बहुत सुंदर थी और बेजोड़ नृत्यांगना थी। नाम था, प्रवीण राय। अकबर ने उसे अपने दरबार में बुलाया तथा उसे खुद के रनिवास में रखने का मंतव्य ज़ाहिर किया। प्रवीण राय प्रखर थी, निडर और सत्य में स्थिर थी। वह बोली - जूठी पत्तल तो मंगते, श्वान और कौए के लिए होती है; हिंदुस्तान के बादशाह के लिए नहीं। बादशाह बोला, वाह! खूबसूरती, कला ओर दिलेरी; तीनों एक साथ। वल्लाह! इस मुल्क के राजघरानों में यदि जांबाज औरतों की हुकूमत होती तो हम मुगल यहां नहीं होते। उसने प्रवीण राय को बाअदब वापस भेज दिया। ओरछा में प्रवीण का महल आज भी पर्यटन स्थल बना हुआ है।
स्त्री के चरित्र का ऐसा गौरवगान उन पुरुषों ने किया है जो खुद महर्षि, ऋषि, संत व महात्मा थे। उन्होंने स्त्री के हृदय में सृजन की शक्ति देखी, मातृत्व का उत्कर्ष देखा, दया-धैर्य-त्याग का विस्तार देखा, अपनी खुशियों के मौन उत्सर्ग की मुस्कान देखी। उन्होंने स्त्री में अर्द्धनारीश्वर की शक्ति के दर्शन किये। इसीलिए वे नारी को देवोपम कह सके। ऋषिका गार्गी वाचकनवी के अनुसार - स्त्री तो सम्पूर्ण अस्तित्व है जिसमें सारे रिश्ते समाए हुए हैं। सृष्टि (प्रजनन) और मुक्ति (भोग से मुक्ति) उसी में सम्भव है।
एक थी सूर्या सावित्री! उसने विवाह के मंत्र लिखे और पहली बार अपनी ही शादी में खुद ने वे मंत्र पढ़े। वे ही मंत्र पढ़कर आज फेरे कराए जाते हैं। उसने पांच हजार वर्ष पहले भी स्वयं द्वारा चयनित युवक से विवाह किया था। वह बोली - स्त्री में मानव जीवन का सम्पूर्ण वैभव है; पुरुष उसकी देह से ऊपर उठेगा, तो उसे नारी की ये विभूतियां अवश्य दिखेंगी।

60. गुरू शक्ति के तीन अद्भुत प्रसंग

1. बाबा मुक्तानंद जी अपने गुरू नित्यानंद जी की आज्ञा से पूरे भारत की परिक्रमा कर रहे थे। केरल में उन्हें एक साधु मिला। उसका नाम शिवथणी था। बाबा ने साधु से विनम्रता पूर्वक सवाल किया कि मंत्र का क्या रहस्य होता है। शिवथणी बाबा बोले कि जा, मेरी जूती उठा कर ला। मुक्तानंद जी ने वैसा ही किया। बाबा ने फिर कहा - इसे कान के पास ले जा कर सुन। बस, यहीं विस्मय हो गया। जूती में मंत्रों का उच्चारण हो रहा था। विस्मित मुक्तानंद जी को उस साधु के शब्द सुनाई दिये - यह है मंत्र की शक्ति। साधु के जप की शक्ति है यह। साधु के आस-पास वाले पूरे वायुमंडल में मंत्र गूंजते हैं। ब्रह्म मुहूर्त में मंत्र की ध्वनि तरंगें हवा के साथ चलती हैं और उस समय जो लोग ध्यान सुमिरन में बैठे होते हैं उनके मन को शीतल करती हैं।

2. मुक्तानंद जी तब सिद्ध बन चुके थे। एक दिन बम्बई से कोई बुद्धिजीवी उनके पास पहुंचा। वह कहने लगा कि मैं मंत्र आदि को नहीं मानता हूं। मुक्तानंद जी ने मुसकुराते हुए अपने सेवादार को कहा - इसे मेरे कमरे में ले जाओ। वह बुद्धिजीवी जैसे ही कक्ष में गया, खाली कमरे में आवाज गूंजी - इस कमरे की दीवारें भी मंत्र बोलती हैं। उसे चारों तरफ की दीवारों सें मंत्र सुनाई देने लगे। बेचारे बुद्धिजीवी की सारी बुद्धि वहीं झर गयी।

3. नागौर के गांव हरनावा की बात है। वहां किसी संत की शिष्या रानाबाई रहती थी। एक बार उपलों के लिए उसकी साथी स्त्री से कहासुनी हो गई। यह उपला मेरा, यह तेरा - ऐसा था झगड़ा। अब इसे कौन सुलझाए। तब शिष्या लड़की ने कहा - उपला तोड़ो और जिसमें मंत्र सुनाई दे वह मेरा बाकी सब तेरे। अनेक लोगों की उपस्थिति में ऐसा किया गया। उपले तोड़ने पर कई उपलों में मंत्र सुनाई दिया।

ये तीनों प्रसंग हमें एक सीनियर राजपत्रित अधिकारी ने सुनाए हैं।

61. चाहे जिधर से जाओ, अंत में शून्य ही मिलता है

शून्य यानी जिसमें संसार का सार अदृश्य रूप से निहित है। शून्य का मतलब खालीपन नहीं है। आकाश के बाद अवकाश यानी शून्य है। पदार्थ की छठी अवस्था शून्य

है (अभी तक तो)। प्रकृति की अपरा अवस्था शून्य है। ब्रह्म शून्य है। समय की सूक्ष्मतम इकाई शून्य है। शरीर की भी अंतिम अवस्था शून्य है। अब यह बात विस्तार से देखते हैं।

1. पदार्थ - पत्थर, कण, अणु, परमाणु, इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन, न्यूट्रॉन, हिग्स, बोसॉन, लेप्टान और क्वार्क। क्वार्क अदृश्य कण होता है यानी शून्य।

2. ठोस, द्रव, गैस, प्लाज्मा (लिक्विड ठोस), माइनस 270 डिग्री तापमान की अवस्था वाले कण। यहां कंपन करते रहने वाले परमाणु अक्रिय होकर आपस में चिपक जाते हैं। इसके बाद चार सौ डिग्री सेल्सियस ताप पर गैस के परमाणु टूट कर बिखर जाते हैं तब रह जाता है शून्य। जब तक पदार्थ की सातवीं अवस्था को मान्यता नहीं मिलती है तब तक तो यही सत्य है।

3. हमारी पृथ्वी, सौर मण्डल, अरबों आकाशगंगाएँ, निहारिकाएं, ब्लैक होल, डार्क एनर्जी, डार्क मैटर, दो सौ सत्रह ट्रिलियन प्रकाश वर्ष जितना बड़ा ब्रह्माण्ड, फिर बिग बैंग वाला महा परमाणु। इसके बाद शून्य।

4. शरीर, प्राण, मन, बुद्धि, जीवात्मा, विश्वात्मा ब्रहा (शून्य)।

5. अण्डाणु, शुक्राणु, उनमें गुणसूत्र, गुणसूत्र में वंशाणु, वंशाणु बनाने वाले रासायनिक तत्व और अंत में शून्य। जन्म, पुनर्जन्म, देह मुक्ति, जीव मुक्ति, सारे कर्माणुओं यानी संस्कारों की समाप्ति और शून्य।

6. भू लोक, भुव लोक, स्वर्ग लोक, मह, जन, तप, सत्य लोक, वैकुंठ लोक, गोलोक और उसके आगे शून्य।

7. समय या काल - नारद भक्तिसूत्र के अनुसार एक सेकंड की एक अरबवीं इकाई को केवल ब्रह्म जानता है। यानी यह शून्य समय।

8. आकाश, अंतरिक्ष, महाकाश और शून्य।

इस तरह सारे अस्तित्व का उद्गम शून्य है और महाप्रलय भी शून्य है।

62. सुदर्शन चक्र

इसके दो रूप हैं - सूक्ष्म और स्थूल। पहले सूक्ष्म सुदर्शन की बात करते हैं। स्व दर्शन यानी सुदर्शन। जब जीव को स्वयं के ब्रह्म रूप का ज्ञान हो जाए तो उस अवस्था को सुदर्शन कहते हैं। मनुष्य देह में जीव को अपनी सम्पूर्णता का बोध हो जाए, यह उस परम अवस्था का संकेत करता है। हमारे शरीर में जो सूक्ष्म सहस्त्रार चक्र है वही सुदर्शन चक्र है। यह अहम् ब्रह्मास्मि का बोध कराने वाला चक्र है। यहां शिवोहम् है। यहां शक्ति (मूलाधार चक्र में स्थित प्राण शक्ति) और शिव (ब्रह्म ऊर्जा) के एकत्व का बोध होता है। यही मनुष्य की सम्पूर्णता है। यहां पहुंचा हुआ मनुष्य विराट है। यही भक्ति, ज्ञान एवं कर्म का अंतिम परिणाम या फल है। यही 'सत्' लोक है। मेरूदंड में सबसे नीचे मूलाधार चक्र भू लोक है। मेरूदंड हमारी गर्दन पर स्टेम सेल (रीढ़ की हड्डी को मस्तिष्क के पिछले भाग से जोड़ने वाला अंग) के सहारे मस्तिष्क से जुड़ कर सबसे ऊपर कपाल तक पहुंच जाता है। यही सहस्त्रार (एक हजार चमकीले आरों वाला या हजार पंखुड़ियों वाला) चक्र है। इस अवस्था में कपाल का सूक्ष्म छिद्र खुल जाता है। तब मनुष्य ब्रह्मांड की कॉस्मिक एनर्जी या गुप्त ऊर्जा से युक्त हो कर सर्व समर्थ बनता है। श्रीकृष्ण ने इसी अवस्था में पहुंच कर अर्जुन को गीता ज्ञान दिया और स्वयं के विराट रूप के दर्शन कराए थे। इसी कारण उन्हें योगेश्वर कहा जाता है।

सुदर्शन चक्र का स्थूल रूप - यह मंत्र की शक्ति से चलने वाला अस्त्र था। इसमें भी चमकीले (परा प्राकृतिक ऊर्जा) आरे होते थे। योग शक्ति से कृष्ण के नियंत्रण में रहता था (वैसे ही जैसे आधुनिक युग में अनेक उपकरण एवं प्रक्षेपास्त्र रिमोट के माध्यम से संचालित होते हैं)। कृष्ण को सुदर्शन मंत्र दुर्वासा ऋषि ने परम की आज्ञानुसार दिया था। जब महाभारत युद्ध समाप्त हो गया और कृष्ण द्वारका लौट गए तब एक दिन दुर्वासा जी आए। वे बोले कि आपके लीला कर्म पूरे हो चुके हैं। अब आपका पृथ्वी पर कोई काम नहीं है। अतः लीला संवरण (पूरी तरह से समेट लेना) कीजिये। कृष्ण ने उनका संकेत समझा। उन्होंने सुदर्शन चक्र वाला मंत्र उन्हें लौटा दिया। थोड़े दिन बाद ही घोर आंगीरस मुनि भी वहां पहुंचे। वे सम्मेदशिखर जी तीर्थ के लिए यात्रा कर रहे थे। उन्होंने ही काशी में कृष्ण को ब्रह्मविद्या का ज्ञान कराया था। वे बोले - आपका कार्य पूरा हुआ। अब अपने

धाम लौट जाओ। फिर कृष्ण ने अंतिम लीला की। जरा नाम के बहेलिये के तीर से अपना देहांत होने दिया। अब यह भी समझ लें कि मनुष्य तो संचित कर्माणुओं के अनुसार भोग कर्म करता है। अवतार पुरुष के अंतःकरण में कोई संचित कर्म नहीं होता है। वे परा शक्ति के विधान के अनुसार देह धारण करते हैं। इसीलिए उनके कर्म को लीलाकर्म कहा जाता है। उन्हें काल नहीं मारता है। उनकी जीवात्मा ब्रह्मरंध्र (कपाल के छेद) से बाहर निकल जाती है।

63. आज गुरु पूनम

गुरूदेव (पिता जी) का विराट एवं सूक्ष्म रूप!

शहर में गुरूदेव का एक मंदिर बनाने का विचार चल रहा था तब अरविंद मेरे साथ था। हम दोनों पाँच सौ वर्ग गज जमीन तलाश कर रहे थे। शास्त्रीनगर से प्रगति नगर के बीच में ऐसा भूखण्ड चाहते थे। कीमत बहुत अधिक थी, इतना पैसा था नहीं। दिल टूटा और विचार भी छूट गया। अरविंद चला गया। मैं अकेला रह गया।

कसक अंदर कायम थी। चार-पांच साल बीत गए। मन तड़पता था कि गुरु का कार्य करने के लिए धन तो होना ही चाहिए। कोई दो माह पहले ध्यानावस्था में पिता जी (गुरुदेव) प्रकट हुए। उनका रूप सोमलपुर वाली शम्भूनाथ जी की टेकरी जितना विशाल था। आवाज आई - यह हमारा विराट रूहानी रूप है। इसे किस मंदिर में बिठाओगे? तुम बना सकोगे इतना बड़ा ठिकाना? दिल धक-धक करने लगा। आँखें भीग गई। तभी वह विराट छवि एकदम सूक्ष्म हो गई। त्रिकोण में स्थित प्रकाश बिंदु जितनी। पुनः आवाज आई - यह हमारा सूक्ष्म रूप है। इसे अपने मन में स्थिर करो। यही दिव्य आश्रम है। हम हमारे सब मुरीदों के मन में ऐसे ही स्वरूप से विद्यमान हैं। सबका मन ही हमारा रूहानी आश्रम है। यहीं हमारे पास बैठो। यहीं इबादत करो। यहीं ध्यान सुमिरन करो। बाहर हमारा मुकाम बनाने के लिए मत भटको।

इसके कुछ दिन बाद ही मैंने खुली आँखों से देखा - आकाश से दिव्य ज्योति के साथ गुरूदेव आश्रम के परिसर में उतरे। उनका कद लगभग दस फीट रहा होगा।

मैने सुना है कि गुरूदेव ने एक बार दिल्ली में भी किसी साधक के घर में खुद का विराट रूप दिखाया था। इसे अजमेर में फतेहचंद जी मिश्रा ने भी देखा। फत्ते चाचा ने स्वयं भी मुझे यह बात कही थी।

आज के दिन मेरी प्रार्थना है कि गुरूदेव हम सब पर ऐसी कृपा कायम रखें।

64. हिमालय के श्वेत लोक में रहती हैं सूक्ष्म शरीरधारी जीवात्माएं

14000 साल पहले तक हिमालय में देव सभ्यता आबाद थी। गंगाद्वारा से आधुनिक बर्मा यानी प्राचीन ब्रह्मदेश तक ऐसा ही था। पांच कैलाश तक महादेव त्रिविक यानी तिब्बत में विष्णु भगवान और ब्रह्मदेश यानी बर्मा में ब्रह्मा का निवास था। भूतेन यानी भूटान अंधेरी जमीन कही जाती थी जहां शिवजी के गण रहा करते थे। उस समय नेपाल का नाम किरात प्रदेश था जहां किरात जाति के लोग रहते थे। गंगाद्वारा से आदि कैलाश तक गंधर्व रहा करते थे। देवप्रयाग पितरों का स्थान था। शांग्रीला घाटी में देव सभ्यता आबादी थी। सिद्धाश्रम में परमहंस या सिद्ध स्तर के ऋषि मुनि रहते थे।

इसी तरह हिमालय में श्वेत लोक भी एक स्थान बताया जाता है। माण्डूक्य उपनिषद के अनुसार यहां सूक्ष्म शरीरधारी जीवात्माएं रहती हैं। आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार भी हिमालय में कई स्थान ऐसे हैं जहां सूक्ष्म शरीरधारी जीवात्माओं का निवास होता है। उनके अनुसार गोमुख से आगे स्थूल शरीर के साथ जाना लगभग असंभव है। वे कहते हैं कि सूक्ष्म शरीर बहुत ही तीव्र गति से यात्रा करते हैं और एक ही अस्तित्व हजारों की संख्या में लोगों के हृदय तक अपना संदेश पहुंचा सकता है। इसी क्रम में यह भी कहा जाता है कि धौलगिरी क्षेत्र में भी सूक्ष्म देहधारी जीवात्माओं को देखा गया है। यह 170 मील लंबा पहाड़ी क्षेत्र है। इसके किनारे दो नदियां हैं।

जब तक सूक्ष्म शरीर का पुनर्जन्म नहीं होता तब तक वह इसी क्षेत्र में रहता है। इनमें केवल स्थूल देह नहीं होती लेकिन इच्छाएं और ज्ञान की शक्ति होती है। यह इस क्षेत्र में तप करते हैं जिससे कि इन्हें पुनर्जन्म के वक्त उच्च गति मिले। परमहंस विशुद्धानंद जी के लिए भी कहा जाता है कि वह अपने गुरु के आदेश से एक मंदिर में सूक्ष्म शरीर से रहे थे। श्वेत लोक की स्थिति सुमेरु पर्वत के पास या थोड़ा आगे बताई जाती है। इसका कोई

वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है लेकिन माण्डूक्य उपनिषद का ऋषि जो बात कहता है उस पर संदेह नहीं किया जा सकता। सूक्ष्म लोक और सूक्ष्म शरीर को केवल दिव्य दृष्टि से ही देखा जा सकता है।

हमने अपने गुरुदेव के सूक्ष्म शरीर वाले कई रूप अनेक बार देखे हैं। हमारे यकीन के अनुसार उनकी पहुंच सिद्धाश्रम तक रही है। वे अपने सूक्ष्म एवं विराट दोनों ही रूपों को प्रत्यक्ष करने में सक्षम रहे हैं।

65. हनुमान चालीसा में भक्ति के आठ स्तर

हनुमान चालीसा में तुलसीदास ने श्री राम भक्त हनुमान जी की भक्ति की है। इसमें भक्ति के आठ स्तर हैं। पहला स्तर है हनुमान जी के आराध्य श्रीराम जी का गुणगान - बरनऊ रघुवर विमल जसु जो दायक फल चार। और आठवां स्तर वह है जब वे अपने पारमार्थिक गुरू से याचना करते हैं कि वे यानी हनुमान जी उनके यानी तुलसी के (भक्त के) हृदय मे निवास करें। यह भक्ति भाव की चरम अवस्था है। भक्त चाहता है कि उसके गुरु का बसेरा उसके हृदय में हो। किंतु यहां तक पहुंचने के लिए अन्य छह भाव भूमिका पार करनी पड़ती हैं जिनका वर्णन हनुमान चालीसा में है।

दूसरी भाव भूमि पर तुलसी हनुमान जी का गुणगान करते हैं - जय हनुमान ज्ञान गुण सागर जय कपीस तिहुं लोक उजागर। इसका तात्पर्य है मन ही मन गुरु का गुणगान करना। हनुमान जी ने सेवा भाव से अपने आराध्य श्रीराम के जो कार्य किए उनका सुमिरन भक्ति का तीसरा स्तर है - राम काज करिबे को आतुर। भक्त की सेवा से खुश आराध्य जब उसकी प्रशंसा करता है, उसका स्मरण भक्ति का चौथा भाग है - रघुपति कीन्ही बहुत बड़ाई तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई। पांचवें स्तर पर तुलसी ने हनुमान जी पर सीता माता की कृपा को याद किया है - अष्टसिद्धि नौ निधि के दाता अस बर दीन जानकी माता। छठे स्तर पर हनुमान जी के नाम सुमिरन की महिमा को स्पष्ट किया है - नासै रोग हरे सब पीरा जपत निरन्तर हनुमत बीरा। संकट तें हनुमान छुड़ावै मन क्रम बचन ध्यान जो लावै। सातवें स्तर पर भी हनुमान जी को याद दिलाते हैं कि मैं तो जन्म-जन्म से आपके आराध्य श्रीराम के विष्णु रूप का सेवक या दास रहा हूं - तुलसीदास सदा हरि चेरा कीजै नाथ हृदय महं डेरा।

यहां तक भक्ति भाव परिपक्व हो जाता है। तब भक्त कहता है कि आप मेरे हृदय में निवास कीजिये। अकेले नहीं, राम-लक्ष्मण और सीता सहित मेरे हृदय में विराजिए - पवनतनय संकट हरन, मंगल मूरति रूप राम लखन सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप।

इस भाव को मन में उतारने के साथ जब हनुमान चालीसा का पाठ किया जाता है तो स्वतः ही राम भक्ति हो जाती है और गुरू भक्ति भी हो जाती है। प्रतिफलित भी अवश्य होती है।

66. जीव और ब्रह्म एक रूप है

जिस तरह प्रकाश और फोटॉन एक ही है इस तरह ब्रह्म और जीव एक ही है। फोटॉन प्रकाश का सूक्ष्मतम कण है जो तरंग और कण दोनों की तरह व्यवहार करता है। जीव भी सर्वव्यापी चेतना यानी ब्रह्म की सूक्ष्मतम इकाई है। इसका प्राण तत्व मनुष्य के शरीर को जीवित रखता है और चेतन तत्व उसे संसार का और संसार से परे अलौकिकता का बोध कराता है। फोटॉन में प्रकाश का सार तत्व है इसी तरह जीव में ब्रह्म का सार तत्व है। इसीलिए सिद्ध योगी अपने शारीरिक जीव में ब्रह्म का सामर्थ्य देख लेते हैं और स्वयं भी वैसे ही हो जाते हैं। इस अवस्था में उनके द्वारा किए गए सहज कर्म हमारे लिए अलौकिक चमत्कार जैसे होते हैं।

जब तक सृष्टि है तब तक प्रकाश भी है। जब तक प्रकाश है तब तक फोटॉन भी है। जब तक जीव जगत है तब तक ब्रह्म की अवधारणा भी है और जब तक ब्रह्म है तब तक जीव भी है। जब तक जीव है तब तक चेतना और प्राण तत्व भी है। व्यक्तिगत चेतना को आत्मा या जीवात्मा कहते हैं। इसी तरह समष्टिगत चेतना को ब्रह्म कहते हैं। ज्ञान की गहरी अवस्था या समाधि में इसकी अनुभूति संभव है। प्राण ऊर्जा को मूलाधार से उठाकर सहस्त्रार चक्र तक पहुंचा देना प्राणायाम है। तब कपाल का छेद खुल जाता है और जीव तथा ब्रह्म की एकरूपता का अनुभव होता है। जो लोग ऐसा करने में समर्थ नहीं है उनके लिए यह सारी बात अविश्वसनीय सी है। वैज्ञानिक आइंस्टीन के लिए प्रकाश की गति प्रति सेकंड 3 लाख किलोमीटर सत्य थी लेकिन सामान्य मनुष्य के लिए यह अविश्वसनीय है। किंतु सत्य किसी के अज्ञान का मोहताज नहीं होता है।

67. कर्म और कर्मफल, दोनों ही मनुष्य के हाथ में है
(गीता अध्याय 18 श्लोक 78)

त्रिकालदर्शी वेदव्यास जी ने संजय के मुंह से कहा है कि जहां योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर अर्जुन है वहां जीत निश्चित ही है। कर्म है युद्ध और फल है विजय। युद्ध शुरू होने से पहले ही कह दिया कि पांडवों की विजय होगी। इसका आधार? कर्म करने के लिए जरूरी सम्पूर्ण शक्ति और एवं आवश्यक सर्वोत्तम युक्ति यानी काम करने की सफलतम विधि। यदि ये दोनों साथ हैं तो कर्म के अलावा फल भी हमारे ही हाथ में है। जहां संशय है, संदेह है, दुविधा है, असमंजस है और भय है वहीं फल भी अनिश्चित है। वहां दूसरे अध्याय का 47वां श्लोक लागू होता है। कर्म फल को बाधित करने वाली यानी ऐसी कमजोरियों को दूर करने के लिए ही गीता का उपदेश दिया गया है। फिर अंत मे कहा गया है कि शक्ति और युक्ति साथ हों तो कर्म और कर्मफल भी हमारे ही हाथ मे होते हैं। अर्जुन बलिष्ठ था। युद्ध में विजय के लिए उस समय जितने भी अस्त्र और दिव्यास्त्र सम्भव थे, वे सब अर्जुन को उपलब्ध कराए गये। लोमेश मुनि ने उसे सर्वाधिक घातक पाशुपतास्त्र उपलब्धि की विधि बताई थी। इस तरह अर्जुन अपने युद्ध कर्म के लिए सर्वशक्तिमान हो गया।

उस कर्म को सफल बनाने के लिए सर्वोत्तम विधि के स्वरूप स्वयं श्री कृष्ण थे। उनके पास थी - अकाट्य कूटनीति, समर नीति, राजनीति, भेद नीति, योग शक्ति (शत्रु पक्ष में कहां क्या हो रहा है इसे दूर से ही देख लेना) और मायाशक्ति (जिसके सहारे जयद्रथ का अंत कराया)।

इस तरह कृष्ण का अर्थ है - कर्म करने की सर्वोत्तम विधि। अर्जुन का मतलब है - कर्म करने के लिए अपेक्षित संपूर्ण शक्ति। ये दोनों मिलकर वरदान बन जाती हैं - कर्म और कर्मफल दोनों ही मनुष्य के हाथ में हो जाते हैं।

68. गुरु ने पूछा - क्या चाहते हो

गुरु थे आदि शंकराचार्य और उनके सामने थे उनके चार सबसे प्रिय शिष्य। उन्होंने गिरी से पूछा - क्या चाहते हो। वह बोला - केवल सेवा चाहता हूं। दूसरे शिष्य

पद्मपाद ने कहा कि स्वयं के भीतर ज्ञानोदय चाहता हूं। तीसरा था हस्तामलक। वह बोला कि परम सत्य की अनुभूति में स्थित रहना चाहता हूं। अर्थात योग अवस्था में रहना चाहता हूं। चौथे शिष्य सुरेश्वर का सिर झुका हुआ था। आचार्य ने उसके सिर पर हाथ रखा। वह सर झुकाए हुए ही बोला कि ज्ञान के अहंकार से मुक्ति चाहता हूं।

गीता में सातवें अध्याय के 16वें श्लोक में श्रीकृष्ण कहते हैं कि मेरे भक्त चार तरह के होते हैं - 1) आर्त, जो किसी कष्ट या संकट से छुटकारा चाहते हैं 2) अर्थी, जो रोटी, कपड़ा, मकान चाहते हैं 3) जिज्ञासु, जो ईश्वर संबंधी ज्ञान चाहते हैं 4) मुमुक्षु, जो मुक्ति दिलाने वाली ब्रह्म विद्या चाहते हैं।

आचार्य ने अपने शिष्यों को कहा था कि अहंकार से छुटकारा ही मुक्ति है। मुक्ति यानी जब समाज के सारे भेद समाप्त हो जाते हैं और मनुष्य का मन बिल्कुल शांत या निस्तरंग हो जाता है।

69. श्रावण पूर्णिमा के दिन पहली राखी पत्नी ने पति की कलाई पर बांधी थी

राखी यानी रक्षा सूत्र। मंत्र शक्ति से अभिमंत्रित किया हुआ रक्षासूत्र। ऐसा ही रक्षा सूत्र देवलोक में सावन पूर्णिमा के दिन पत्नी द्वारा पति की कलाई पर बांधा गया था। यह संसार की पहली राखी थी। देवराज इंद्र की कलाई पर उनकी पत्नी शची ने यह राखी बांधी थी।

प्रसंग था देवासुर संग्राम। असुर पहले देवताओं को पराजित कर चुके थे। वृत्रासुर उनका राजा था। दोनों के बीच पानी के लिए युद्ध होते रहते थे। 2400 किलोमीटर लंबे और 400 किलोमीटर चौड़े हिमालय क्षेत्र में उस समय देव, असुर, नाग, किन्नर, गंधर्व, यक्ष, यति, अप्सरा आदि जातियां रहती थीं। इस क्षेत्र में अभी भी 4700 झीलें हैं। 20000 से ज्यादा ग्लेशियर यानी बर्फ की नदियां हैं। 100 के लगभग पर्वत शिखर हैं। जिनमें चौदह पर्वत शिखरों की ऊंचाई 8 किलोमीटर से भी अधिक है। ऐसे पर्वत शिखर सुमेर के क्षेत्र में देवलोक था। यह वर्तमान गंगोत्री क्षेत्र से घिरा हुआ था जिसकी स्थिति गढ़वाल हिमालय में बताई जाती है। ऐसा कहा जाता है कि असुरों नें लगभग 100 जगह जल प्रवाह को रोक दिया था। युद्ध का यही मुख्य कारण था।

तब असुरों की शक्ति से परेशान देवराज इन्द्र को उनकी पत्नी ने आश्वस्त किया। देवताओं के गुरु बृहस्पति की प्रेरणा से उन्होंने एक अभिसिक्त धागा अपने पति की कलाई पर बांधा और कहा कि यह धागा युद्ध में आपकी रक्षा करेगा। वस्तुतः वह धागा शची के सतीत्व की शक्ति से अभिमंत्रित था। गुरु बृहस्पति ने भी देव सेनापतियों की कलाई पर इसी तरह अभिमंत्रित धागा बांधा था। उस युद्ध में देवताओं की विजय हुई। इस घटना से भारतीय समाज और संस्कृति को रक्षा सूत्र की अवधारणा मिली। ऐसे ही विष्णु वामन की पत्नी लक्ष्मी ने असुरराज बली को राखी बांधी थी। वह लक्ष्मी महिर्षि भृगु और ख्याति की पुत्री थी। उन्होंने राजा बलि को उन्हीं के वचन से बांध दिया था और कहा था कि अपने वचन की रक्षा करना। उक्त वचन था भगवान विष्णु नौ माह बैकुंठ में रहेंगे और तीन माह पाताल में।

रक्षासूत्र का तीसरा प्रसंग यम और यमी के साथ जुड़ा हुआ है। ये सूर्यवंशी राजा सूर्य देव और उनकी पत्नी संज्ञा की संतान थे। कहते हैं कि यमी न जाने क्यों यम पर आसक्त हो गई थी। तब सूर्य देव ने उसे अभिमंत्रित धागा दिया जिसके प्रभाव से उसकी आसक्ति मिट गई। यही धागा उसने यम की कलाई पर बांध दिया। बदले में यम ने उसे महामृत्युंजय मंत्र दिया था। यह तीनों प्रसंग कथित देवलोक के हैं। वहां से राखी जब धरती पर उतरी तो उसका रूप ही बदल गया।

70. व से व्यक्ति, भ से भक्त

जीव जब किसी शरीर में व्यक्त हो जाता है तो उसे व्यक्ति कहते हैं। जो अपने हृदय में परम सत्ता के किसी रूप को साकार कर लेता है उसे भक्त कहते हैं। जो युक्ति हमारे हृदय में ईश्वर के किसी सगुण रूप को साकार कर देती है उस युक्ति को भक्ति कहते हैं। इस तरह भक्त अपने हृदय में भगवान को देखता है। ज्ञानी सारे संसार में परम सत्ता के ज्योति रूप को देखता है। वह प्रत्येक मनुष्य में इस ज्योति यानी जीवात्मा को देखता है, शरीर को नहीं। जो कर्तापन और भोक्ता भाव की आसक्ति से छूट जाता है उसे कर्म योगी कहते हैं। वह निष्काम भाव में जीवित रहता है और कर्म करता है।

जिसने परम सत्ता को साक्षात देख लिया है उसे ऋषि कहते हैं। जो दूसरों को भी यानी अपने शिष्यों को उस परम सत्ता की अनुभूति करा देता है उसे महर्षि या गुरु कहते हैं। जो

सदैव ब्रह्म की ही अवस्था में स्थित रहता है उसे ब्रह्मऋषि कहते हैं। सत्य की अनुभूति के लिए आंतरिक अभ्यास करते रहने वाले मनुष्य को साधक कहते हैं।

जो सत्ता सारे संसार के सभी मनुष्यों के शरीर में स्थित है उसे परमात्मा कहते हैं। जो इस परमात्मा का भी मूल है उसे ब्रह्म कहते हैं।

71. पचास लाख टन हीरे की धूल वायुमंडल में फैलाई जाएगी

धरती के बढ़े हुए तापमान को कम करने के लिए वैज्ञानिकों ने एक उपाय बताया है। हमारे वायुमंडल की दूसरी परत में 50 लाख टन हीरे की धूल छिड़कने से धरती का तापमान 1.6 डिग्री सेल्सियस तक कम हो सकता है। वायुमंडल की इस परत का नाम समताप मंडल है। यह समुद्र तल से 51 किलोमीटर ऊपर है।

यहां का तापमान बहुत अधिक रहता है। यही तापमान प्रकाश के साथ धरती तक पहुंचकर धरती के तापमान को बढ़ा रहा है। यहां हीरे की धूल फैलाने से यह होगा कि हीरे के कण सूरज से आने वाली गर्मी को वापस अन्तरिक्ष में भेज देंगे।

समस्या यह है कि 50 लाख टन हीरे कहां से लाएं। इनकी कीमत भी बहुत ज्यादा होती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि धरती के नीचे 90 से 150 मील तक बहुत अधिक हीरों का भंडार है। एक अनुमान के अनुसार 10 अरब को 10000 से गुना कर दें इतना क्रेडिट हीरे का भंडार वहां मौजूद है।

धरती को ठंडी करने का एक अन्य उपाय भी है। वायुमंडल की दूसरी परत में सल्फर डाई ऑक्साइड गैस छोड़ी जाए। यह गैस बादलों में पानी की बूंदे बनाती है और बादलों को घना कर देती है। यह घने बादल सूरज की गर्मी को रोकने में सक्षम होते हैं। इससे बरसात भी होगी जिसके परिणाम स्वरुप धरती को ठंडा किया जा सकता है। किंतु ऐसे बादलों से बरसात के साथ एसिड भी नीचे आएगा जो कि नुकसानकारी है। इसलिए अभी हीरे की धूल छिड़कने का उपाय ही निरापद माना जा रहा है। यह दोनों ही योजनाएं अभी सैद्धांतिक स्तर पर हैं।

72. ऊपर पर भी आग, नीचे भी आग, फिर भी हम जीवित हैं

हमारी धरती तेरह हजार किलोमीटर मोटी है। इसके केंद्र का तापमान छह हजार डिग्री सेल्सियस है यानी हमारे नीचे इतनी आग है।

हमारे सिर पर सूर्य है। उसके केंद्र का तापमान डेढ़ करोड़ डिग्री सेल्सियस है। यहां बनने वाले प्रकाश को उसकी सतह तक पहुंचने में डेढ़ से दो लाख साल लग जाते हैं। सतह तक जाते-जाते यह तापमान छह हजार डिग्री सेल्सियस रह जाता है। इस तरह हमारे सिर पर भी इतनी आग है। फिर भी पृथ्वी पर जीव जगत जीवित रहता है।

सूरज के ताप को पृथ्वी तक पहुंचने में लगभग पंद्रह करोड़ कि.मी. की दूरी पार करनी पड़ती है। बीच में सौ किलोमीटर मोटा वायुमंडल भी है। इस कारण धरती तक आते-आते उक्त गर्मी औसतन पैंतीस डिग्री सेल्सियस रह जाती है। बुध ग्रह पर दिन का तापमान 167 डिग्री, चाँद पर 127 और मंगल पर 20 डिग्री सेल्सियस रहता है। किंतु मंगल पर रात का तापमान माइनस 150 डिग्री तक चला जाता है। इसलिए इन ग्रहों पर जीवन सम्भव नहीं है।

उधर पृथ्वी की बात करें तो उसके केंद्र एवं बाहरी सतह के बीच में अनेक परतें हैं। इसकी पपड़ी महाद्वीपों के नीचे अधिकतम 70 कि.मी. मोटी है। यहां विविध प्रकार के अथाह खनिज पदार्थ हैं। कहीं-कहीं दस हजार मीटर गहरे समुद्र हैं। इसलिए धरती के केंद्र वाली गर्मी सतह तक पहुंचने के दौरान बहुत कम रह जाती है। इससे भी बड़ी बात यह है कि पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति इस वायुमंडल को बांधे रखती है। यदि गुरुत्व शक्ति नहीं होती तो वायुमंडल टूट कर अंतरिक्ष में चला जाता और यहां भी जीवन नहीं होता।

73. भक्ति चाहिए तो जीवन की प्राथमिकताएं बदल दो

सामान्य तौर पर हमारे जीवन की प्राथमिकताएं हैं आजीविका, परिवार, मकान, रिश्तेकार एवं मित्र। फिर भक्ति। इस तरह भक्ति पांचवें क्रम पर होती है। यदि हम भक्ति का आनंद लेना चाहते हैं, भगवान से निकटता चाहते हैं तो फिर यह प्राथमिकताएं बदलनी होंगी। भक्ति को पहले क्रम पर रख दो। शेष प्राथमिकताएं यथावत रहने दो। तब

यह होगा कि भक्ति से शुद्ध हुए भाव नीचे वाली प्राथमिकताओं में आने लगेंगे। उसके असर से सबकुछ शुद्ध होता जाएगा। कहीं कुछ गलत नहीं हो सकेगा। भक्ति भाव में जीवन व्यतीत होने लगेगा। काम भी सारे होते रहेंगे और भक्ति भी क्रमशः परिपक्व होती रहेगी। यही परिपक्वता अंततः भगवान के रूप में साकार होगी। अनेक विवाहित महात्माओं के दृष्टांत हमारे सामने हैं। विशुद्धानंद जी तो बारह वर्ष तक सन्यासी रहे। फिर तीन-तीन वर्ष अन्य स्तर की भक्ति में लीन रहे। उसके बाद अपने गुरू के आदेश से विवाह किया था। आजीविका भी चलाते रहे थे। सूफी संत हज़रत हरप्रसाद मिश्रा साहेब का जीवन भी ऐसा ही दृष्टांत है।

74. धरती से करोड़ों गुना अधिक पानी आकाश में है

हमारे सौरमण्डल में तीन ग्रह ऐसे हैं जो जमे हुए पानी यानी बर्फ से बने हुए हैं और ढके हुए भी हैं। यूरेनस (अरुण), नेप्च्यून (वरुण) और प्लूटो (यम) ऐसे ही ग्रह हैं। इनका तापमान क्रमशः -195 डिग्री, -200 डिग्री और -235 डिग्री सेल्सियस है। इन्हें बर्फ का विशाल दानव कहा जाता है। यम ग्रह पर तो बर्फ के ज्वालामुखी हैं। वहां वोल्केनो से आग नहीं, बर्फ निकलती है। इसकी तो संरचना में ही पचास प्रतिशत बर्फ है। इन तीनों ग्रहों पर पानी, मीथेन गैस एवं अमोनिया गैस बर्फ के रूप में जमी हुई है। अरुण और वरुण ग्रह तो पृथ्वी से भी बड़े हैं।

सबसे ज्यादा पानी सूर्य और यम के बीच में है। सूरज से साढ़े चार अरब कि.मी. दूर गोलाकार डोनट जैसी बर्फ की एक परत है। यह तीस करोड़ कि.मी. मोटी है। यदि यह पिघल जाए तो धरती हजारों फीट गहरे पानी में डूब जाए। आकाश में हाइड्रोजन के विशाल बादल भी हैं। इन बादलों में ऑक्सीजन व अन्य गैसों के अलावा धूलि कण भी हैं। यहां हाइड्रोजन - ऑक्सीजन के परमाणु मिलकर पानी के अणु बनाते रहते हैं। इस कारण यहां भी पानी का अथाह भंडार है।

हमारे सूरज को बने हुए जब केवल दस करोड़ साल ही हुए थे, तब ही पानी अस्तित्व में आ गया था। पानी उस वक्त गैसीय रूप में था। धरती जब आग का गोला थी तब भी गैस रूपेण पानी था। ठण्डी होने पर यही पानी करोड़ों साल तक बरसता रहा। यही पानी समुद्रों की जल राशि है।

अभी न्यूयार्क में 39 करोड़ साल पहले का पानी चट्टानों में फंसा हुआ मिला है। इसी तरह हिमालय के कुछ ग्लेशियरों में पांच करोड़ वर्ष पहले वाला पानी जमा हुआ है। भू-वैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि हमारी गंगा नदी चार करोड़ साल पुरानी है। यानी यह चार करोड़ साल पुराने ग्लेशियर से निकली है।

75. आदमी को चाहिए, वक्त से डर कर रहे

वक्त भी तुनक मिजाज होता है। किसी पर दिल आ जाए तो उसे शिखर पर चढ़ा दे और रूठ जाए तो धूल चटा दे।

ओबेराय होटल समूह के संस्थापक मोहन सिंह किसी समय एक होटल में क्लर्क थे। वक्त ने हाथ पकड़ लिया, वे इतने बड़े होटल समूह के मालिक बन गए।

एक था महमूद गजनवी। अफगानिस्तान के गजनी क्षेत्र का राजा था। भारत पर उसने 17 बार आक्रमण किए। सन 1025 में उसने सोमनाथ के मंदिर को तोड़ा और सारी सम्पत्ति लूट ली। उस वक्त उसने दो करोड़ दीनार मूल्य की सम्पत्ति लूटी थी। आज एक दीनार का मूल्य 250 रुपए के बराबर माना जाता है। ....फिर वक्त उससे तुनक गया। मात्र पांच वर्ष बाद ही वह तपेदिक की बीमारी से मर गया।

कौन जाने किस घड़ी वक्त का बदले मिजाज - मुगल सेनापति बैरम खान की तलवार ने आठ साल के अकबर को दिल्ली का बादशाह बना दिया था। फिर पूरे हिंदुस्तान की बादशाहत अकबर के कदमों में रख दी थी। वही बैरम खान हज यात्रा के दौरान जब गुजरात में ठहरा हुआ था, उसकी हत्या को गई। कन्नौज का राजा जयचंद्र मोहम्मद गोरी से पराजय के बाद नदी में डूब जाने के लिए मजबूर हो गया था। इसलिए स्वयं की उपलब्धि पर इतना गरूर मत करो कि वक्त तुम से चिढ़ जाए।

76. हमारा अस्तित्व ब्रह्मांड से जुड़ा हुआ है

जिन तत्वों से संसार का निर्माण हुआ है, उन्हीं तत्वों से हमारा शरीर बनता है - ऑक्सीजन, कार्बन, हाइड्रोजन, कैल्शियम, फास्फोरस, प्रोटीन आदि। हमारे शरीर में

जो आत्मा है, ब्रह्मांड में व्याप्त वही शक्ति चेतना है। ब्रह्मांड के आरम्भ में प्रकाशवान महा स्फोट हुआ था। ऐसे ही प्रजनन के लिए जब शुक्राणु एवं अंडाणु का संलयन (मिलन) होता है तब सूक्ष्म स्पार्क (चिंगारी) जैसा प्रकाश कौंधता है। उसी क्षण अंडाणु से अरबों जिंक परमाणु निकलते हैं। ये नई कोशिकाओं एवं प्रोटीन के निर्माण में मदद करते हैं। और जिस तरह एक तारे से दूसरे तारे का निर्माण होता है उसी प्रकार एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य का जन्म होता है। एक जीव से दूसरे जीव का जन्म होता है।

हमारा जीवन आंतरिक और बाहरी तरंगों से घिरा हुआ रहता है। इनका संतुलन हमें स्वस्थ रखता है और असंतुलन हमें बीमार कर देता है। अंदर प्राण ऊर्जा की तरंगें हैं। बाहर सूर्य एवं अन्य ग्रहों से आने वाली विद्युत चुंबकीय तरंगें हैं। सूर्य से आने वाली तरंगें धरती पर तापमान बढ़ा कर हृदय एवं श्वसन संबंधी रोग बढ़ा रही हैं। विगत सौ साल के दौरान धरती का तापमान 1.7 डिग्री सेल्सियस ज्यादा हो गया है। अनियमित बरसात, बाढ़, सूखा, तूफान आदि भी इसी के परिणाम हैं जो मानव जीवन को झकझोर रहे हैं।

दूसरी तरफ हमारे शरीर में ऊर्जा प्रवाह के 108 मर्म केंद्र हैं। यहां से प्राण ऊर्जा का प्रवाह सारे शरीर में होता रहता है। वायु एवं खान-पान संबंधी प्रदूषण से यह बाधित होता रहता है। परिणाम स्वरूप हम बीमार होते रहते हैं। ये ऊर्जा केंद्र विविध स्थानों पर होते हैं - सिर और गर्दन पर 37, शरीर के निचले हिस्सों पर 22, छाती एवं पेट पर 12, पीठ पर 14 और भुजाओं पर 22। प्राणायाम से इन सब केंद्रों पर ऊर्जा के प्रवाह का नियमन सम्भव है। इसके जरिए प्राण ऊर्जा का विस्तार भी होता है। फलस्वरूप आध्यात्मिक उन्नति की गति तेज होती है। एक्यूप्रेशर, एक्यूपंक्चर एवं आयुर्वेदीय चिकित्सा से भी बाधित ऊर्जा प्रवाह को ठीक किया जा सकता है।

अंदर वाली ये ऊर्जा धाराएं सूक्ष्म नाड़ियों से जुड़ी हुई होती हैं। ये सारी नाड़ियां तीन प्रमुख नाड़ियों से संबद्ध रहती हैं - इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। इसलिए अनुलोम-विलोम क्रिया से भी अंदर वाले ऊर्जा तंत्र को संतुलित रखा जा सकता है।

77. प्रेरक प्रसंग

जयपुर की तान्या सकलेचा शादी के बाद सिकंदराबाद चली गई। दो साल बाद

बेटी का जन्म हुआ। बेटी का जन्मोत्सव मनाने के लिए पति-पत्नी जयपुर आए। सारे सगे-संबंधियों को बुलाया। उनको विशेष आग्रह से बुलाया जिनके साथ घर वालों के संबंध टूट चुके थे।

उत्सव में सबको चांदी की एक प्लेट भेंट की। उस प्लेट पर पूरी वंशावली के साथ संबंधियों व उनके बच्चों के नाम लिखे हुए थे। यह देख कर सब के सब भाव-विभोर। गदगद। सबकी आंखों में खुशी के आंसू। तब तान्या के जेठ जी ने मंच पर पहुंच कर कहा - मैं तान्या बहू को सलाम करता हूं। हमारी पीढ़ियां जो काम नहीं कर सकीं, वह काम हमारी छोटी बहू ने किया है।

उसके बाद दो घण्टे तक सारे लोग झूमझूम कर नाचते रहे - ननद-भाभी, देवरानी-जिठानी, चाचा-भतीजे, मामा-भांजे आदि।

दूसरे दिन खानदान के बुजुर्ग गलता जी तीर्थ पर गए। वहां अंजुरी में पानी भरकर सामूहिक स्वर में बोले - हम अपने पारस्परिक मन-मुटाव एवं अस्वीकृतियों का तर्पण करते हैं। फिर सभी ने स्नान किया। शाम को तान्या के जेठ जी ने एक बड़ी होटल में शानदार पार्टी रखी। तब पुराने मन-मुटाव का कहीं नामोनिशान तक नहीं दिखा।

78. एक दीक्षा ऐसी भी

चंपलाल की उम्र 62 साल है। किसी बड़ी कम्पनी में सॉफ्टवेयर इंजीनियर के पद से रिटायर हुए थे। फिर आध्यात्मिक साधना के लिए अघोर बाबा निरंजन के आश्रम में पहुंचे। बाबा ने कहा - पहले स्वयं के मनोविकारों और राग-द्वेष का दाह संस्कार करो। तब दीक्षा होगी। चम्पालाल ने पूछा - इसके लिए क्या करूं। बाबा ने पीले पन्नों की एक कॉपी देते हुए कहा कि इसमें अपने जीवन भर की गलतियां लिखो। मन-मुटाव एवं राग-द्वेष की मोटी मोटी घटनाएं लिखो। फिर अंत में पश्चाताप के शब्द लिखो। उसके बाद यहां आओ।

चम्पालाल ने वैसा ही किया। तब आश्रम के एक कोने में पांच किलो लकड़ी की चिता बनाई। कॉपी को उस पर रखा। चम्पालाल ने खुद उस चिता को मुखाग्नि दी। लौट कर स्नान किया। तीसरे दिन उठावना किया। उठावने की रस्म में उसी कॉपी के पहले पृष्ठ की

फोटोप्रति को कांच के फ्रेम में रखा गया। वहां लिखा हुआ था - चम्पालाल के सारे नकारात्मक जीवन के दाह संस्कार का उठावना।

अगले दिन बाबा ने उन्हें शिव तत्व की दीक्षा दी। एक सौ से भी अधिक भक्त उपस्थित थे। फिर नियम बताया - प्रतिदिन सुबह दाल रोटी और शाम के वक्त उबली हुई सब्जी का आहार लेना है। रात में ढाई बजे से सुबह पांच बजे तक मंत्र का जाप करना है। दिन के समय सेवा कार्य करना है। यही सन्यास आश्रम है - यहां भी और घर में भी।

79. गीता - 14वां अध्याय, श्लोक संख्या 6

मनुष्य की सतोगुणी प्रवृत्ति उसे ज्ञान की तरफ आसक्त करती है। आसक्ति बंधन है। वस्तुवादी ज्ञान से विद्वता का अहंकार होता है। यही बंधन है।

संसार में लाखों तरह की वनस्पतियां हैं, लाखों तरह के पशु-पक्षी, कीड़े एवं पदार्थ हैं। इनके विषय में जानकारी को वस्तुवादी ज्ञान कहा गया है। कोई वैज्ञानिक है, इंजीनियर है, डॉक्टर है, कूटनीतिज्ञ है। इस आधार पर मनुष्य स्वयं के विषय में सोच लेता है कि मैं अमुक-अमुक हूं। इसी स्तर पर वह ज्ञान के अहंकार से बंध जाता है। इसका कोई दुष्परिणाम तो नहीं होता है लेकिन पुनर्जन्म अवश्य होता है। भले ही किसी श्रेष्ठ योनि में हो, किंतु होता अवश्य है। इसलिए ज्ञान के अहंकार से भी बचना है।

गीता के सातवें अध्याय के सत्रहवें श्लोक में श्रीकृष्ण कहते हैं कि तत्व ज्ञान से युक्त भक्त उन्हें सबसे अधिक प्रिय है। तत्व ज्ञान का अर्थ है परम सत्ता की अनुभूति। आत्मा, जीवात्मा, जीव, प्राण एवं परमात्मा संबंधी सत्य की अनुभूति को तत्व ज्ञान कहा गया है। यहां अहंकार नहीं है। यहां शांति है, मौन है, निष्काम कर्म है, विश्वबंधुत्व है और आंतरिक आनंद है। जब कोई मनुष्य ऐसी अनुभूति कर लेता है तब स्वतः ही उसके मन में परम सत्ता के प्रति अनन्य भक्ति का उदय होता है। ऐसा मनुष्य ही अनन्य भक्त है। ऐसा भक्त ज्ञानी भी है और योगी भी। यहां कोई बंधन नहीं है। यहां मुक्ति है। यहां प्रकृति के विकार नहीं हैं। यहां शुद्ध चेतना है। यहां व्यक्तिगत एवं ब्रह्मांडीय चेतना की एकरूपता है। यहां व्यक्ति का अहम् ही ब्रह्म है।

विज्ञान में यही अंतर्निहित परम ऊर्जा है जिससे संसार के सारे पदार्थ बनते हैं और अंततः उसी में लीन हो जाते हैं। विज्ञान में अदृश्य तरंग ही ब्रह्म है और कण ही प्रकृति है। हमारे शास्त्र ब्रह्म को अव्यक्त एवं प्रकृति को व्यक्त सत्ता कहते हैं। विज्ञान में तरंग अव्यक्त है और कण व्यक्त है। व्यक्त का ज्ञान बांधता है। अव्यक्त का ज्ञान मुक्त करता है। यहां भी ज्ञान का मतलब अनुभूति है। इस अव्यक्त अवस्था को विज्ञान में क्वांतम अवस्था कहा गया है।

80. गंगा में अस्थि विसर्जन का वैज्ञानिक आधार

दाह संस्कार के बाद जो दांत एवं हड्डियां बच जाती हैं उन्हें गंगा या ऐसी ही नदियों में विसर्जित करने की धार्मिक परम्परा है। किंतु इसके पीछे ठोस वैज्ञानिक आधार भी है। दांत और अस्थियों में हमारे डीएनए सुरक्षित रह जाते हैं। डीएनए यानी ऐसे रासायनिक अणु जिनमें हमारी आनुवंशिक जानकारी निहित रहती है - हमारा आकार-प्रकार, आंखों एवं बालों का रंग तथा हमारे माता-पिता के कुछ गुण-अवगुण। ये अणु इतने पतले होते हैं कि इन्हें सबसे शक्तिशाली इलेक्ट्रॉनिक माइक्रोस्कोप (सूक्ष्मदर्शी) से ही देखना सम्भव है।

तो दाह संस्कार के बाद भी दांतों एवं अस्थियों में ये डीएनए बचे हुए रह जाते हैं। इसका मतलब यह लगाया जाता है कि मृत मनुष्य का अस्तित्व अभी पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ है। इसलिए उन्हें नदी में विसर्जित कर देते हैं। पानी में भीगे रहने के असर से वे डीएनए नष्ट हो जाते हैं। तब माना जाता है कि मृत मनुष्य का शरीर अब पूरी तरह से समाप्त हो गया है। इसके अलावा हड्डियों में जो कैल्शियम एवं फास्फोरस जैसे रसायन होते हैं वे नदी के पानी में घुल कर उसे उपजाऊ बनाते हैं। यही कारण है कि गंगा के किनारे वाली जमीन ज्यादा उपजाऊ रही है। ये रसायन पानी में रहने वाले सूक्ष्म जीवों को मार कर पानी को शुद्ध करते हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसी परंपरा बनाने वाले हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि वैज्ञानिक आधार पर कितने उन्नत रहे होंगे।

विज्ञान के अनुसार मृत्यु के बाद भी हड्डियों एवं दांतों में लाखों साल तक डीएनए सुरक्षित रह सकते हैं। कई जगह साढ़े तीन-चार हजार साल पुराने कंकालों से डीएनए प्राप्त किये गए हैं और उनके परीक्षण से उन कंकालों की आनुवंशिक जानकारी एकत्र की गई है।

81. कथा जपः

योगी अथवा गुरु द्वारा कही गई बात जप किए हुए मंत्र जितनी प्रभावशाली होती है। इसका कारण यह है कि गुरु की व्यक्तिगत चेतना परमात्मा की वैश्विक चेतना के साथ जुड़ी हुई रहती है। इसलिए गुरु का प्रत्येक कथन चेतन शक्ति का कथन होता है। गुरु के ऐसे कथन को मन में धारण कर लेना मंत्र के जप जितना फलदाई होता है।

82. भक्ति तो मुक्त करती है, बांधती नहीं है

कुछ लोग ईश्वर की भक्ति करते हैं और कुछ गुरु के ध्यान में स्थिर रहने का प्रयास करते हैं। अब यह समझो कि दोनों ही सर्वव्यापी चेतन ऊर्जा हैं। ईश्वर या परमात्मा ब्रह्मांड व्यापी चेतन शक्ति है - जीव में भी और अजीव में भी। वह हमारे शरीर में तथा पदार्थ के परमाणुओं में कंपन करती रहती है। हमारी देह के चारों तरफ भी यही चेतना व्याप्त है। जिस मनुष्य ने इस सत्य की अनुभूति कर ली उसे गुरु, संत या महात्मा कहते हैं।

इसका मतलब कि गुरु तो ज्ञान शक्ति है। यह शक्ति शिष्य के मन में, उसके अस्तित्व के बाहर, गुरु के ठिकाने पर एवं जहां-जहां ऐसे महात्मा विराजमान हैं वहां सर्वत्र मौजूद रहती है। ईश्वरीय चेतना भी मंदिरों में, मठों में, गिरजाघरों में तथा दरगाहों में घनीभूत रहते हुए पूरे वायुमंडल में विद्यमान रहती है।

इसलिए इबादत कहीं भी बैठ कर करें, हम ईश्वरीय चेतना से जुड़ जाते हैं। भक्ति किसी भी समय करो, हम परम एवं गुरु चेतना से जुड़ जाते हैं। जब हम इबादत करते हैं तो हमारे मन की चेतना में सकारात्मक कंपन बढ़ जाते हैं। ये कंपन हमारे शरीर से बाहर व्याप्त चेतना से जुड़ने लगते हैं। उस ऊर्जा के सहारे हमारी भक्ति की मनोतरंगें मंदिरों में प्रतिष्ठित प्रतिमाओं एवं साधु-संतो तक पहुंचने लगती हैं। इस तरह हमारी भक्ति तरंगों का, मंत्र की तरंगों का विस्तार हमें परम सत्ता या हमारे गुरु से जोड़ता रहता है। इसलिए समय एवं स्थान की सीमा से खुद को मत बांधों। गुरु सत्ता एवं ईश्वरीय ऊर्जा समय और स्थान से बाधित नहीं है। इतना जरूर है कि रूहानी ठिकानों पर चेतन शक्ति सघन रहती है

क्योंकि ये गहन ऊर्जा केंद्रों पर ही बनाए जाते हैं। इस कारण यहां बैठ कर इबादत करने से मनोयोग की जल्दी प्राप्ति हो सकती है।

सारे शास्त्रों में परमात्मा को अनादि, अनंत एवं सर्वव्यापी कहा गया है। उसे काल की सीमा से परे बताया गया है। फिर भी हम इस बात को नहीं मानते हैं और समय एवं स्थान की सीमा से बंधे रहते हैं। हमारे गुरुदेव के कुछ शिष्यों ने भक्ति के इस रूप का साकार किया है। उनकी धारणा है कि - सारे दिन शुद्ध हैं, सम्पूर्ण समय शुद्ध है और गुरु साहब तो हर जगह मौजूद हैं। वह परिवार समृद्धि के शिखर पर है। ज़रूरत है आस्था की। आवश्यकता है निरंतरता की।

83. स्त्री की गति (आंतरिक सोच), पुरुष की विगति (आंतरिक पतन) और योगी की प्रगति (आंतरिक उन्नति) दिखती नहीं है

ढाई हजार साल पहले एक स्त्री सुवर्चला ने अपने विवाह की अनोखी शर्त रख दी - जो युवक अंधा भी हो और जिसे दिखता भी हो, मैं उसी के साथ विवाह करूंगी। उस समय का पूरा उत्तर भारत आश्चर्यचकित रह गया कि कोई स्त्री ऐसा भी कर सकती है।

नादिर शाह ईरान का सुल्तान था। मतिभ्रम के कारण उसने अपने ही बड़े बेटे की आंखें निकाल ली। बाद में उसका अंधा पुत्र निर्दोष प्रमाणित हुआ। मनुष्य के अंदर की प्रवृत्ति उससे ऐसा जघन्य कार्य भी करा लेती है।

योगी श्यामाचरण लाहिड़ी गृहस्थ थे। एक दिन प्रातः कालीन सत्संग के बाद बोले - हमारा समय हो गया है। अब मुझे देह छोड़नी है। उन्होंने सबके सामने बैठे-बैठे अपनी देह त्याग दी। उस शहर के लोग यह नहीं जानते थे कि वे इस स्तर के योगी थे।

उपर्युक्त तीनों ही संदर्भों के इतिहास में सैकड़ों दृष्टांत मिल जाते हैं।

84. दीक्षा कर्म बहुत अधिक कठिन होता है

कोई साधु गुरु मंत्र देने के लिए किसी मनुष्य का चयन करे, यह सौभाग्य की बात है। किंतु यहीं से अग्नि परीक्षा शुरू हो जाती है। वह साधु ऐसे मनुष्य को उसके जीवन का विगत और आगत सब कुछ दिखा देता है। इसे देखकर मनुष्य थर्रा जाता है - खुद के द्वारा ही किए गए और किए जाने वाले अपकर्मों को देखकर वह कांप जाता है।

तब महात्मा के चरणों में गिरकर पुकार करता है - उद्धार करो, कल्याण करो, रक्षा करो। ऐसी ही आंतरिक पुकार में दीक्षा का बीजारोपण होता है। तब उसका आंतरिक शुद्धिकरण आरंभ होता है।

तिब्बत के एक साधु मिलारेपा के साथ ऐसा ही हुआ था। उसके गुरु का नाम था मारेपा। गुरु को अंतरवाणी सुनाई दी कि एक योगी शिष्य आ रहा है। गुरु ने देख लिया कि उसके साथ अशुद्धियां और पापों का ढेर भी आ रहा है। वह अपने गुरु के घर 30 वर्ष तक रहा। गुरु ने उसे मारा-पीटा, दुत्कारा, प्रताड़ित किया, तिरस्कृत किया, भूखा रखा। एक दिन गुरु पत्नी ने बहुत दुखी होकर पूछा कि बेचारे के साथ इतना ज्यादा बुरा व्यवहार क्यों करते हो। तब मारेपा ने कहा कि वह अपने शिष्य का शुद्धिकरण कर रहा है। आंतरिक शुद्धि के बिना दीक्षा कर्म संभव नहीं है। मैं इसे सत्य की अनुभूति कराना चाहता हूं।

फिर 30 साल बाद मिलारेपा की दीक्षा हुई। गुरु ने उसे अपना सब कुछ दे दिया। फिर भी गुरु को संतुष्टि नहीं हुई। वह अपने शिष्य को लेकर भारत में एक बौद्ध साधु नरोपा की शरण में आया। उसके आदेश से मिलारेपा ने नौ माह तक एक गुफा में एकांत तपस्या की। अंततः आंतरिक जागरण हुआ। आत्मा की अनुभूति हुई। अहम् ब्रह्मास्मि जैसा ज्ञान हुआ। यही वह साधु था जो पहली बार कैलाश पर्वत पर अंत तक चढ़ने में सफल हुआ।

सूफी संत बाबा बादामशाह साहब भी कहते थे कि इबादत करना नाक से चने चबाने जितना कठिन काम होता है। गुरुदेव हज़रत हरप्रसाद जी मिश्रा साहब कहते थे कि गुरु से बड़ा धोबी और कोई नहीं होता है। उसे शिष्य के मन में जमे हुए जन्म-जन्मांतर के मैल

को साफ करना पड़ता है। शुरुआती दीक्षा मंत्र से इसी तरह की सफाई होती है। इसके बाद ही आत्मानुभूति कराने वाला गुरु मंत्र मिलता है।

85. जाने कितने दिनों के बाद गली में आज चाँद निकला

यह ज्ञात नहीं कि कितने जन्म-जन्मांतर के बाद वर्तमान जीवन में सद्गुरु की शरण मिली है। अपने उद्धार का अवसर मिला है। मुक्ति का साधन जान लेने का सौभाग्य मिला है। देहधारी परमात्मा कहे जाने वाले गुरु की कृपा मिली है। जिसने ऐसा समझा वह तर गया। पुनर्जन्म के सिलसिले से छूट गया। जो इस गहराई को नहीं समझा वह चूक गया। किसी ने धन-दौलत मांग ली। किसी ने बेटा मांग लिया। किसी ने शादी-ब्याह मांग लिया। किसी ने सेहत मांग ली। जो मुक्ति देने आया था उससे बंधन मांग लिए। जिसके पास अमृत का घड़ा रखा हुआ था उससे कोल्ड ड्रिंक मांग ली।

कबीर बहुत गरीब थे। जुलाहे थे। अपने गुरु से उन्होंने केवल राम का नाम मांगा। रविदास सड़क पर जूते-चप्पल की मरम्मत करके जीवन का गुजारा करते थे। गुरु से अपना उद्धार मांगा। सेठ धर्मदास उस जमाने में करोड़पति थे। कबीर के भीतर परमात्मा को देखा तो धन-दौलत छोड़ दी। कबीर के चरणों में गिर कर बोले उद्धार करो।

जाने कितने दिनों के बाद गली में आज चाँद निकला। अमीर खुसरो ने भी यह समझ लिया और नाचे - ऐ री सखी मोरे पिया घर आए। दिल्ली सल्तनत में ऊंचे ओहदे पर थे लेकिन गुरु के सामने नाचते थे। खुसरो पार लग गए।

मुझे लगी ने जग की लाज, मैं इतना ज़ोर से नाची आज कि घुंघरू टूट गए। द्वारकाधीश के मंदिर में मीरा ऐसे ही नाची थी। भक्ति-भाव में नाचते-नाचते देह छूट गई। मीरा उस पार चली गई। दक्षिण भारत में भी ऐसी ही एक महिला व्यक्ति थी अंदाल। वेंकटेश भगवान के सामने नाचते-नाचते उनकी सेज पर चढ़ गई। फिर ऐसे नाची कि देह छूट गई। चेतन जी स्वामी भक्ति भाव में नाचते-नाचते बंगाल से वृंदावन पहुंच गए। वे हरे कृष्ण हरे राम का कीर्तन करते-करते नाचते थे। उनके शिष्य नित्यानंद स्वामी पूरे 20 साल तक भारत में कीर्तन के साथ नाचते रहे। गुरु और शिष्य दोनों तर गए। गुरु नानक ने 20 साल तक कीर्तन किया। पूरी-पूरी रात भजन भाव में निमग्न रहते थे। फिर एक दिन ब्रह्म

मुहूर्त में एक ओंकार सतनाम का बोध हुआ और तर गए। भगवान की भक्ति में नाचते-नाचते तर जाने का पहला दृष्टांत देवर्षि नारद ने प्रस्तुत किया था।

गली में आज चाँद निकाला। घुंघरू टूट गए। जन्म-जन्मांतर के बंधन छूट गए। गुरु ऐसा ज्ञान सबको दे।

86. मां के पेट तक पहुंचने वाला जीव - एक लंबी और रोचक यात्रा

कोई चार अरब वर्ष पहले धरती पर ज्वालामुखी ज्यादा थे। इससे वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड गैस और जलवाष्प यानी हाइड्रोजन और ऑक्सीजन पहुंची। इनके परमाणुओं से कार्बन के जैविक परमाणु बने। इन सबसे मिलकर फिर कुछ अन्य जैविक अणु और यौगिक बने (प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, लिपिड, नाभिकीय अम्ल आदि)। इससे कोशिकाएं बनी। यह कोशिकाएं हमारे शरीर की सबसे छोटी जीवित इकाई कही जाती हैं।

कोशिकाएं कई प्रकार की होती हैं। इनमें शुक्राणु और अंडाणु जैसी जनन कोशिकाएं भी होती हैं। इनके मिलने से मानव शरीर की प्राथमिक इकाई (युग्मनज) बनती है। यह भी एक लंबी प्रक्रिया है। स्त्री के शरीर में प्रजनन पथ होता है। वहां एक नलिका (फैलोपियन ट्यूब) होती है। इसमें अंडाशय से निकला अंडाणु 24 घंटे तक शुक्राणु से मिलने की प्रतीक्षा करता है। इसी नलिका में शुक्राणु 5 दिन तक अंडाणु का इंतजार करता है। 24 घंटे बाद अंडाणु मर जाता है और 5 दिन बाद शुक्राणु की मृत्यु हो जाती है। इस बीच यदि यह दोनों मिल जाते हैं तो एक नई कोशिका बनती है - युग्मनज या जीनोम। इसमें डीएनए गुणसूत्र और वंशाणु होते हैं। वंशाणुओं में हमारे पूर्वजों की छाप होती है। अब इस निषेचित कोशिका को गर्भाशय तक जाना होता है। इसमें 3 से 5 दिन का समय लग जाता है। फैलोपियन ट्यूब में ही निषेचित कोशिका का विभाजन होता है। वह एक से दो, चार, आठ, सोलह और बत्तीस तक बन जाती है। इन कोशिकाओं का समूह शहतूत के आकार का होता है। फिर यह एक गोलाकार रूप लेकर गर्भाशय में पहुंच जाती है।

इन जीवित कोशिकाओं से बने हुए जीवित शरीर में जीव कैसे पहुंचता है। ऐसा माना जाता है कि यह जीव वायुमंडल में जलवाष्प पर टिका हुआ रहता है। बरसात के माध्यम से यह जमीन पर उगने वाली वनस्पतियों में प्रवेश करता है। अंततः फल-फूल के माध्यम

से यह हमारे शरीर में जाता है। वहां मांस, मज्जा, हड्डी आदि की छह अवस्थाएं पार करते हुए शुक्राणु में पहुंचता है। शुक्राणु से यह अंडाणु में जाता है और एक पूर्ण जीव की संरचना संभव होती है।

यह केवल मोटी-मोटी जानकारी है। इसमें हमारे जन्म-जन्मांतर से संचित संस्कारों वाली बात छूट गई है।

87. गुरू गोविंद

गुरू (परब्रह्म) यानी वह मनुष्य जिसे ज्ञान हो गया है। गोविंद - वह परम सत्ता जिसका ज्ञान होने से मनुष्य गुरू या महात्मा कहा जाता है। परम सत्ता - जिस शक्ति से सारा ब्रह्माण्ड सृजित होता है, जीवजगत और जड़जगत का अस्तित्व व्यक्त होता है। गोलोक इस सत्ता का केंद्र है। गोलोक का शाब्दिक अर्थ है वह स्थान जिसके आगे कुछ नहीं है। यही गोविंद का निवास बताया जाता है।

कबीर आत्मज्ञान के लिए अपने गुरू रामानंद जी के पास गए। रामानंद जी बोले - राम के दो रूप हैं। ब्रह्म और उसकी आंशिक शक्ति के धारक अवतारी श्री राम। तुम्हें अवतारी श्री राम के विश्व रूप ब्रह्म की साधना करनी है। तुम्हारे अंदर जो जीवात्मा है वह उसी अनादि अनंत निराकार सत्ता ब्रह्म का सूक्ष्मतम एकल अस्तित्व है। उस एकल अस्तित्व को जान लेना ही आत्मज्ञान है। फिर उसी में आत्मा के वैश्विक सत्य के दर्शन होते हैं। यह ब्रह्म ज्ञान है। गुरू रूप में मेरा अस्तित्व केवल माध्यम है।

योगवशिष्ठ ग्रंथ में ब्रह्मर्षि वशिष्ठ जी ने विद्यार्थी श्री राम को कहा कि ब्रह्म ही आदि-अनादि सत्ता है। अपने अन्तःकरण में उसी सनातन सत्ता का ज्ञान करो।

गीता में गुरू रूप श्रीकृष्ण ने शिष्य भाव में स्थिर अर्जुन को स्वयं के ब्रह्मत्व के दर्शन कराए। फिर कहा कि ओम् तत्सत् इसी परम ब्रह्म सत्ता का शब्द रूप है।

हमारे गुरूदेव ने दीक्षा के समय किसी को कहा कि अपने आराध्य महादेव के वैश्विक स्वरूप में ही अब गुरू रूप को देखो। उसे अंदर अनंत प्रकाश के हजारों गोले दिखाते हुए

समझाया कि यही अंतिम सत्ता है यानी ब्रह्म है - ज्यातिर्मय, ऊर्जावान। आगे जिम्मेदारी शिष्य की है - अपनी आध्यात्मिक यात्रा एक जन्म में पूरी करे अथवा अनेक जन्मों में।

तो जिस परम सत्ता का ज्ञान किसी मनुष्य को गुरू, संत, महात्मा आदि बना देता है वही परम सत्ता अनादि सत्य है। गुरू के चरणों में एकाग्र बैठने से यही ज्ञान शिष्य के मन में उतरता है। उसी से मन शुद्ध होता है - श्री गुरू चरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि। हनुमान चालीसा की इस पहली पंक्ति में इसी सत्य को स्पष्ट किया गया है।

88. प्राण वायु ऑक्सीजन की संरचना करने वाले प्रोटॉन कण 'अमर' होते हैं

मनुष्य जीवन का भौतिक आधार है प्राण। हमारे शरीर को जिस ऑक्सीजन गैस की ज्यादा जरूरत होती है उसे हिन्दी में प्राणवायु कहते हैं। हमारे वायुमण्डल में लगभग इक्कीस प्रतिशत यही प्राणवायु है। पानी का आधार प्राणवायु है - ऑक्सीजन का एक और हाइड्रोजन के दो परमाणु मिल कर पानी का एक अणु, कणिका बनाते हैं।

इस प्राण शब्द में प्राणु है। प्राणु को अंग्रेजी में प्रोटॉन कहते हैं। ऑक्सीजन के एक परमाणु में ऐसे आठ प्रोटॉन होते हैं। ऐसे सोलह प्रोटॉन से मिल कर प्राणवायु अथवा ऑक्सीजन का एक अणु बनता है।

यह प्रोटॉन परमाणु के भीतर एक उप कण होता है। परमाणु में तीन उप कण होते हैं - इलेक्ट्रॉन न्यूट्रॉन एवं प्रोटॉन। यह प्रोटॉन अमर कण है। इसके क्षय होने या नष्ट होने का अभी तक प्रमाण नहीं मिला है।

यही कारण है कि हमारी दार्शनिक मान्यता में प्राण को अमर माना जाता है। प्राण को जीवन माना जाता है। प्राणायाम के अभ्यास में इसी प्राण तत्व का विस्तार किया जाता है। यह प्राण सर्वत्र है इसलिए योगी के संकल्प की पहुंच सर्वत्र हो जाती है। कुंडलिनी जागरण में भी शरीरस्थ यही प्राण ब्रह्मरंध्र के रास्ते ब्रह्मांड से जुड़ जाते हैं।

89. गुरु हमें अमृत्यु के लिए जीना सिखाता है

वे सब लोग जो आज जीवित हैं, एक दिन मर जाएंगें। हम सब हमारी मृत्यु तक ही जीवित हैं। जीवित रहने के दो तरीके हैं - 1. बार-बार जन्मते रहो और मरते रहो 2. केवल इस बार मर कर दोबारा नहीं मरना है। यह दूसरा तरीका गुरु सिखाता है। पुनर्जन्म से बचने की विधि गुरु सिखाता है। जन्म नहीं तो मृत्यु भी नहीं। इसे कहते हैं अमृत्यु के लिए जीवित रहना।

जीवन की चलती हुई श्वास कब, कहां रुक जाएगी, हमें नहीं पता। एक पल में सब कुछ छूट जाता है। जो धन, यश, विद्वता जीवन के 'पचास साल' में कमाई, वह मात्र एक ही क्षण में छूट जाती है। सारा संचय यहीं रह जाता है। फिर अगले जन्म में भी ऐसा ही सब कुछ - पढ़ो, काबिल बनो, भोग-स्वाद में ठहरे रहो, जो कुछ अर्जित कर सकते हो वह करते रहो, फिर मर जाओ। हजार बार ऐसा हो चुका है और आगे भी न जाने कितनी बार यही होता रहेगा। यदि हमें हमारे सारे विगत जन्मों की स्मृति हो जाए तो हम चीत्कार करने लगेंगे, पागल हो जाएंगे।

इस जंजाल से छुटकारा जरूरी है। इसका उपाय गुरु बताता है। देखिऐ, यह गुरू गायत्री यही बात कहती है - ओम् गुरूदेवाय विद्महे, गुरू ब्रह्माय धीमहि, तन्नो गुरुः प्रचोदयात्। इसका अर्थ है - हम गुरू के दिव्य स्वरूप को समझें। यह दिव्य रूप परम सत्तावान ब्रह्म जैसा है। वह ब्रह्म विद्या का ज्ञाता है। यही विद्या हमें अमृत्यु की अवस्था प्राप्त कराती है। इसलिए हम गुरुदेव के ब्रह्मरूप को धारण करते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे हमें इस मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करें। हमें बार-बार की मृत्यु से अमृत्यु तक पहुंचाने वाला ज्ञान उपलब्ध कराएं। कैसे, यह कोई गुरु ही बताएगा।

90. गुरु की अद्भुत शक्ति के दो दृष्टांत

1) एक महिला प्रोफेसर को श्री कृष्ण के साक्षात दर्शन कराए।

बाबा मुक्तानंद जी के आश्रम में एक बार कोई महिला प्रोफेसर गई। वह प्रतिभा मैडम दर्शन शास्त्र पढ़ाती थी। गुरु जी ने शक्तिपात किया। वह आनंद में झूमने लगी। उसे लगा

कि वह जो कुछ पढ़ाती है, वह बेकार है। खैर पांच दिन बाद मुंबई लौट गई। फिर वापस आई। इस बार उसने कहा - बाबा! मैं कृष्ण की भक्त हूं। मुझे उनके त्रिभंगी मुद्रा में दर्शन कराओ तो ही ऐसी रूहानी शक्ति पर यकीन होगा। बाबा अपनी जगह से उठे। अपने कक्ष की तरफ गए। थोड़ी दूर जाकर खड़े हो गए। अब प्रोफेसर चौंकी। उसे कृष्ण की त्रिभंगी अवस्था के दर्शन हुए। उसने देखा - कभी बाबा, कभी कृष्ण। आंखें मसल-मसल कर कई बार देखा कि कहीं यह भ्रम तो नहीं है। वह विमुग्ध हो गई। नौकरी से इस्तीफा दिया और सन्यासिनी हो गई। बाबा के आश्रम में रहने लगी।

2) **गुरुजी की किसी शिष्या** को ससुराल में जला दिया गया। वह पूरी तरह जल गई। बेहोशी की अवस्था में पड़ी थी। गुरुदेव ने उसे उसके शरीर से बाहर निकाला। छ: माह तक उसकी जीवात्मा को शरीर से अलग रखा। शरीर का इलाज चलता रहा। उसे कष्ट से बचाने के लिए ऐसा किया गया। वह ठीक हो गई। तब गुरु के आदेश से वापस ससुराल चली गई। आज उसके तीन बच्चे हैं। खुद नौकरी करती है। पति के साथ रहती है। गुरु में अपार सामर्थ्य होता है। गुरु की शरण में रहने वालों को ऐसे अनुभव होते रहते हैं। बात शरण की है, आते-जाते रहने की नहीं। बात आंतरिक भरोसे की है, आश्रम में केवल हाजिरी लगवाते रहने की नहीं। बात गुरु भक्ति की है, कोरे किस्से-कहानियों की नहीं। देखना यह है कि हम लोग इस कसौटी पर खरे उतरते हैं या नहीं।

91. परिचय - श्री शिव शर्मा

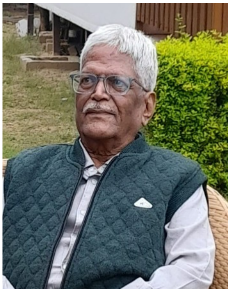

आध्यात्मिक विषय पर श्री शिव शर्मा की लगभग छब्बीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अध्यापन के क्षेत्र में अपनी अमूल्य सेवाएँ देने के बाद आप राजकीय महाविद्यालय, देवली (टोंक) के हिन्दी विभाग से सेवानिवृत्त हुए। आपने अध्ययन, लेखन एवं प्रकाशन की चालीस वर्षीय लंबी यात्रा तय की है। पत्रकारिता में शताधिक लेख तथा फीचर्स प्रकाशित हो चुके हैं साथ ही स्तम्भ लेखन एवं सम्पादन के क्षेत्र में आप अपने उल्लेखनीय कार्य के लिए विख्यात हैं। जिला पत्रकार संघ (अजमेर) एवं एन. एम. एफ आई. (ऋषिकेश) द्वारा सम्मानित किए जा चुके हैं।

प्रकाशित पुस्तकें: -

1.अजमेर; इतिहास एवं पर्यटन 2.पुष्कर; अध्यात्म एवं इतिहास 3. हमारे पूज्य गुरुदेव 4. दशानन चरित 5. गुरु भक्ति की कहानियाँ 6. मोक्ष का सत्य 7. सूफी संत और उनकी कथाएँ 8. कर्मण्येवाधिकारस्ते 9. गीता पाप मोचनी 10. गीता में जीवन की पूर्णता 11. सद्गुरु शरणम् 12. नारी मुक्ति 13.अवतार का सत्य 14. श्रीकृष्ण से मुलाकात 15. गीता - 150 प्रश्नोत्तर 16. एक श्लोक की गीता 17. संत श्री सेवाराम 18. रूहानी पुरुष 19. श्री राम चरित 20. श्रीकृष्ण जयते 21. श्री हनुमान चालीसा - विस्तृत व्याख्या 22. अजमेर के उवैसी सूफी संत 23. सूफी फकीर - हज़रत रामदत्त मिश्रा 'उवैसी' 24. गुरुदेव के आध्यात्मिक पत्रों द्वारा - मार्गदर्शन 25. सत्संग

आगामी पुस्तक - गुरु के साथ मनोसंवाद।

भारतीय दर्शन के पाँच महावाक्य

१. अहं ब्रह्मास्मि

(बृहदारण्यक उपनिषद १६४६१०, यजुर्वेद)
मैं ही ब्रह्म (परम सत्य या विश्व चेतना) हूँ।
यह आत्मा और ब्रह्म की एकता को दर्शाता है।

२. तत्त्वमसि

(छान्दोग्य उपनिषद ६ध८ध७, सामवेद)
तू वह (ब्रह्म) है। यह बताता है कि
व्यक्तिगत आत्मा और परम सत्य एक ही हैं।

३. अयम् आत्मा ब्रह्म

(माण्डूक्य उपनिषद १६२, अथर्ववेद)
यह आत्मा ही ब्रह्म है। आत्मा और ब्रह्म
के अभेद को रेखांकित करता है।

४. प्रज्ञानं ब्रह्म

(ऐतरेय उपनिषद १६२, ऋग्वेद)
चेतना (प्रज्ञान) ही ब्रह्म है। यह चेतना को
परम सत्य के रूप में स्थापित करता है।

५. सर्वं खल्विदं ब्रह्म

(छान्दोग्य उपनिषद ३६१४६१, सामवेद)
सब कुछ ब्रह्म है। यह विश्व के प्रत्येक
तत्व में ब्रह्म की सर्वव्यापकता को दर्शाता है।